UNIVERSAL LIBRARY
OU_182583
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.01/S52S. Accession No. H283.

Author शेक्सपियर.

Title शेक्सपियर के ड्रामे

This book should be returned on or before the date last marked below. राजेन्द्र द्विवेदी 1958.

शक्सपियर के सॉनेट

लेखक का अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्द-कोश

● **बड़ा आकार** ● **सजिल्द** ● **पृष्ठ ३१४** ● **मूल्य आठ रुपये**

'आजकल', दिल्ली—'इस शब्द-कोष में रस, रीति, गुण, दोष, अलंकार, ध्वनि, शब्द-शक्ति, औचित्य, वृत्ति, वक्रोक्ति, साहित्यालोचन, साहित्यवाद, काव्यांग, नाटकशास्त्र और छन्दशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का विवेचन किया गया है·····यह पुस्तक साहित्य-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए विशेषतः महत्त्वपूर्ण है। इन कठिन शास्त्रीय विषयों पर हिन्दी में उत्तम कोटि के प्रकाशन के लिए आत्माराम एण्ड संस साधुवाद के पात्र है।'

'दक्षिण भारत', मद्रास—'यह कोश ही नही, भाष्य भी है। हर शब्द का अर्थ ही नहीं दिया गया है, अपितु तत्सम्बंधी आवश्यक सामग्री भी क्रमबद्ध रूप से साथ दे दी गई है। शब्द का इतिहास, व्युत्पत्ति आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। जरूरी उदाहरणों से अर्थ को और विशद् कर दिया गया है।

'यह अपने ढंग की हिन्दी में शायद प्रथम पुस्तक है और हिन्दी साहित्य की बहुत पुरानी कमी को पूरी कर रही है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाये उतनी थोड़ी है।'

'मध्यभारत सन्देश', ग्वालियर—'हिन्दी में ऐसे निर्देश-ग्रन्थों का अभाव है और उस अभाव-पूर्ति की दिशा में निश्चय ही इस पुस्तक ने बड़ा योगदान किया है। जैसा कि नाम से ही विदित है, पारिभाषिक शब्दों का यह कोश उपयोगिता की दृष्टि से अपना स्थान स्वय बना लेगा। लेखक श्री राजेन्द्र द्विवेदी और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।'

'अजन्ता', हैदराबाद—'· लेखक ने निस्सन्देह एक महान अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है और इसके लिए उनका यह प्रयास प्रशंसनीय है···।'

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली—'···प्रयास प्रशंसनीय है क्योंकि हिन्दी को इस प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता है।'

'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली—'· हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तक की नितान्त आवश्यकता थी···'

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

शेक्सपियर के सॉनेट

अनुवादक

राजेन्द्र द्विवेदी

एम० ए० (अंग्रेज़ी, संस्कृत), साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न

प्राक्कथन

डा० हरिवंश राय बच्चन

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसन्टण्ड,) हैदराबाद ८.

COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	तीन रुपया
प्रथम संस्करण	:	सितम्बर, १९५८
आवरण	:	ना० मा० इंगोले
मुद्रक	:	मूवीज़ प्रेस, दिल्ली-६

प्राक्कथन

श्री राजेन्द्र द्विवेदी ने शेक्सपियर के सॉनेटों का हिन्दी पद्यानुवाद किया है और उनकी इच्छा है कि मैं इसका प्राक्कथन लिख दूँ। मैं द्विवेदी जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने इस रूप में अपनी कृति के साथ मेरा नाम संबद्ध करना चाहा है।

हिन्दी लेखकों का ध्यान आजकल अनुवादों की ओर विशेष रूप से जा रहा है। इसे मैं एक बड़ा शुभ लक्षण मानता हूँ। इससे केवल हिन्दी की क्षमता ही नहीं सिद्ध होगी, उसकी अभिव्यंजना-शक्ति भी बढ़ेगी। अंग्रेज़ी से हमारा विशेष सम्बन्ध होने के कारण हम प्रायः अनुवाद के लिए अंग्रेज़ी की ओर झुकते हैं। आशा है, भविष्य में हिन्दी के लेखक देश की प्रान्तीय भाषाओं और संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं का अध्ययन कर उनकी विभूतियों से हिन्दी का भंडार भरेंगे।

अनुवाद करना बहुत कठिन कार्य है। गद्य का अनुवाद किसी तरह कर भी लिया जाय तो पद्य का अनुवाद प्रायः असंभव-सा प्रतीत होता है। कविता में शब्दार्थ के ऊपर बहुत-सी बातें होती हैं। अनुवाद में प्रायः शब्दार्थ ही लाया जा सकता है। फिर भी आज इसकी आवश्यकता है कि एक भाषा के काव्य का परिचय दूसरी भाषा के लोग करें।

अनुवाद को पढ़ते समय मूल के सौन्दर्य की प्रत्याशा करना उचित नहीं। अनुवाद अनुवाद है। यों तो तुलसीदास का अनुवाद भी अंग्रेज़ी में हुआ है और अंग्रेज़ी के विद्वानों द्वारा; पर जो उनकी अवधी की ध्वनि से परिचित हैं, उनको वह तनिक नही सुहायेगा। प्रस्तुत अनुवाद वास्तव में उन लोगों के लिए है जो शेक्सपियर को मूल में नहीं पढ़ या समझ सकते।

श्री राजेन्द्र द्विवेदी अंग्रेज़ी और संस्कृत के एम० ए० हैं। उन्होंने बड़े श्रम से इस अनुवाद को तैयार किया है। अनुवाद की विशेषता यह है कि उन्होंने मूल के अत्यंत निकट रहने का प्रयत्न किया है। मेरी समझ में सफल अनुवाद वह है जिसमें अनुवादक का व्यक्तित्व भी अपनी झलक दिखाता रहे। यह कहाँ

दिखेगा, वहाँ रचना अनुवाद न होकर मौलिक-सी प्रतीत होगी। इस अनुवाद में भी ऐसे स्थान आपको मिलेंगे। मैं चाहता था, ऐसे स्थल सर्वत्र होते। सबसे अच्छा अनुवाद वह है, जो अनुवाद न मालूम हो।

मैं श्री द्विवेदी जी की लगन और श्रम की प्रशंसा करना चाहूँगा। किसी भी काव्यकृति पर अंतिम निर्णय देने का अधिकार पाठक को होता है। मैं केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि लोग उनके कार्य की कठिनता को समझें और उनकी उपलब्धि को देखें।

विदेश मंत्रालय,
नई दिल्ली।
८-९-५८

—बच्चन

विषय-सूची

	पृष्ठ
	(भूमिका के)
आमुख	**१–३६**
१. सॉनेट-परम्परा	१
२. एलिजाबेथ युगीन सॉनेट और शेक्सपियर	२
३. शेक्सपियर की रचनाएँ और सॉनेट	५
४. सॉनेटों की समस्याएँ	१०
५. सम्बोधित व्यक्ति	१२
६. सॉनेटों का रचना-क्रम	१७
७. सॉनेटों सम्बन्धी कुछ अन्य बातें	२०
८. सॉनेटों में शेक्सपियर का दार्शनिक दृष्टिकोण	२२
९. सॉनेटों का सौन्दर्य	२७
१०. यह अनुवाद	२९
	(पुस्तक के)
सॉनेट	**१–७७**

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	के लिये	पढ़ें
१०	२१	यंत्रिक	यंत्रित
१२	१८	दशा	दृशा
१२	२१	पुण्यस्थल	पण्यस्थल
२२	२४	या तब	पा तव
२५	५	बनी	बने
५४	४	जी	जो
६१	६	अनुरूप	अनरूप
६२	६	करता	डरता
६८	१३	तेरी	तेरा
७०	२८	डर	उर
७३	१०	जोए	जो
७३	१६	छोट्टे	छोटे
७७	१०	ह्ही	ही

आमुख

१

सॉनेट-परम्परा

उद्भव

सॉनेट गीति-काव्य की एक विशिष्ट रूपयोजना है। इटली के नगरों और गाँवों की गलियों में गूँजने वाले लोक-गीतों ने कब यह रूपयोजना प्राप्त कर ली, विद्वान् इसका कोई निश्चित समाधान नहीं खोज पाये हैं। उनके उद्भव का वास्तविक काल-निर्धारण अभी तक नहीं हो सका है[१]। मानव-जीवन की अनेक संस्थाओं की भाँति ही सॉनेट की जन्म-तिथि भी अविदित ही है, तथापि यह सुनिश्चित है कि रूपयोजना की दृष्टि से यह निश्चित रूप प्राप्त करने से पूर्व इसके लिये अनेक प्रयोग किये गये होंगे। अनुमानतः मध्ययुग के आरम्भिक चरण में गड़रियों की संगीत-लहरियों से ट्योक्रिटस के इडिल (गीतों) की ही भाँति इनका भी जन्म हुआ होगा[२]। पर्याप्त निष्पन्न रूप में सॉनेट का सर्वप्रथम उदाहरण पियरो डेल विग्ने (मृत्यु १२४९) का एक सॉनेट बताया जाता है; विग्ने फ्रेडरिक द्वितीय का प्रख्यात चान्सलर था। इस सॉनेट को देखने से भी यह सिद्ध हो जाता है कि उसके पूर्व भी बहुत काल तक प्रयोग होते रहे होंगे[३]।

इटली में सॉनेट परम्परा

सॉनेट परम्परा का उद्भव कविता की दो धाराओं से हुआ है— प्रोवैंकल सामन्त दरबारों की संगीतियों से और दूसरे १३वीं शताब्दी की इटली के नगर-राज्यों से। प्रोवैंकल-संगीतियों का प्रत्येक पाठक पीट्रार्क के सॉनेटों से प्रभावित पश्चिमी यूरोप के सॉनेटों में वही पहचानी हुई प्रवृत्तियाँ और रूप-विधान देखेगा। एलिजाबेथ युगीन इंगलैण्ड के सॉनेटकारों ने भी अनजाने ही

---

१. कौलियर्स एन्साइक्लोपेडिया, सॉनेट।

२. इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, सॉनेट।

३. तदेव।

अपनी रचनाओं में प्रोवैंकल गीतिकारों की अभिव्यक्तियों की छाप छोड़ी है[१]। वर्तमान सॉनेट का आद्य प्रणेता गिटोन ऑफ अरेज़ो (मृत्यु १२९४) है, जिसने इटली के (बाद में पीट्रार्क के नाम से सम्बद्ध) सॉनेट की रूपयोजना को अन्तिम रूप दिया—क ख ख क, क ख ख क तुकों वाली अष्टपदी और फिर एक निश्चित मोड़ के बाद एक षट्पदी; यद्यपि थोड़ी-बहुत फेरफार भी अनुमत थी। गिटोन का ही सॉनेट दांते और पीट्रार्क की कुशल लेखनी का माध्यम पाने के बाद इटली के परवर्ती कवियों के लिय एकमात्र उपादेय आदर्श बन गया; विशेषतः अपनी महान् अमर कृति 'लौरा' में पीट्रार्क द्वारा प्रयुक्त सॉनेट एक ऐसा आदर्श बन गया कि पश्चिमी यूरोप के अनेक महाकवियों ने उसका अनुकरण किया, यद्यपि वे वैसा परिपाक प्राप्त न कर सके[२]। पीट्रार्क के सॉनेट की तुक योजना प्रायः गिटोन जैसी ही थी—क ख ख क, क ख ख क की अष्ट-पदी और ग घ ङ, ग घ ङ (या ग घ, ग घ, ग घ) की षट्पदी। इटली के सॉनेट प्रायः एक माला (एक विषय पर दूर तक चलने वाली शृखला) के रूप में लिखे गये हैं और वे प्रायः एक वास्तविक अथवा काल्पनिक हृदय-स्वामिनी (मिस्ट्रेस) को संबोधित है; यद्यपि प्रेम के साथ-साथ अनेक अन्य विषयों—राजनीति, दर्शन आदि का भी उनमें समावेश होता था[३]। कविता के साथ गेयता भी उनका एक आवश्यक गुण था और संगीत के उपयुक्त शब्द-योजना और भावाभिव्यक्ति के लिये रचयिता की एक विशिष्ट भावस्थिति अनिवार्य थी। सॉनेट नपी-तुली १४ पंक्तियों में संक्षिप्त, मित और संयत रूप में कवि के शान्त क्षणों में स्मृत विचारों और भावों का एक लेखा-जोखा था—उसके अनुभव का एक छोटा-सा खंड था[४]।

२

एलिजाबेथ युगीन सॉनेट और शेक्सपियर

पश्चिमी यूरोप में सॉनेट-शैली

पीट्रार्क के अनुकरण पर सॉनेट-शैली पश्चिमी यूरोप में भी अपनाई गई। जर्मनी में प्लेटेन का 'सॉनेट ऑस वेनेडिग' इस परम्परा का अत्युत्कृष्ट उदाहरण

---

१. लेवर—दि एलिजाबेथन सॉनेट, पृष्ठ १।

२. एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, सॉनेट।

३. चैम्बर्स एन्साइक्लोपेडिया, सॉनेट।

४. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

है। फ्रान्स मे भी देस्पोतेस, द वेफ, पियरे द ब्राश, दु बैले और रौंसर्ड आदि ने अत्युत्कृष्ट सॉनेट लिखे, जिनसे अंग्रेजी कवि भी प्रभावित हुए[१]। ट्यूडर युगीन इंगलैण्ड ने जब पीट्रार्क के सॉनेटो को अपना आदर्श बनाया, उस समय उनके पास इटली जैसी परम्पराएँ न थी, जिनके ऊपर वे अपनी रचनाओं को आधृत करते, अतः इटली के सॉनेट छन्द का अंग्रेजी में परिवर्तन भी एक दुरुह कार्य बन गया[२]। सौ वर्ष पहले यद्यपि चासर ने दशाक्षरी (डेकासिलेबिक) पंक्ति को एक परिमार्जित रूप दिया था, फिर भी इस बीच भाषा का रूप बहुत कुछ बदल चुका था और चासर का छन्द अब विशेष उपयोगी न रह गया था। अतः ट्यूडर कालीन कवियों ने एक नवीन अकृष्टपूर्व भूमि में बीज-वपन किया, जिसे बाद में एलिजाबेथ युगीन कवियों ने लहलही शस्य सुवर्ण मंजरियों से भूषित कर दिया[३]।

इंगलैण्ड और सॉनेट

पीट्रार्क के सॉनेटों ने चासर को आकर्षित नही किया। यह विस्मय की ही बात है। इंगलैण्ड में इस परम्परा का बीजारोपण व्याट और सरे द्वारा किया गया। 'टालेट्स मिसलेनी' (१५५७) इतनी लोकप्रिय हो गई कि समसामयिक और परवर्ती कोई भी कवि उसके प्रभाव से अछता न रहा। किन्तु इटैलियन की तुलना में अंग्रेजी में तुकसम शब्दों के आपेक्षिक अभाव के कारण तथा कुछ अन्य कारणों से तुकयोजना में कुछ फेरबदल कर लिया गया[४]। अंग्रेजी कवियों ने पीट्रार्क की तुकयोजना को अपेक्षतया सरल बना दिया, इससे उसके गुरुत्व, गरिमा और चारुता में चार चाँद ही लग गये। सरे ने तीन चतुष्पादों और अन्त में एक द्विपाद की (जो पूर्वगत १२ पंक्तियो के भाव का योजित सारांश देता था) योजना को अपनाया और उसकी तुकयोजना रखी—क ख क ख, ग घ ग घ, ङ च ङ च, छ छ। गैसकोइन के शब्दो मे यह सॉनेट की एक सुनिर्धारित रूपयोजना बन गई। यह सरे के अतिरिक्त डेनियल, ड्रेटन, स्पेन्सर, सिल्वेस्टर और ड्रमंड द्वारा भी अपनाई गई और यही शेक्सपियर के सॉनेट की भी रूप-योजना है। फिर भी इसे सभी अंग्रेजी कवियों द्वारा नहीं अपनाया गया।

---

१. एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिया, सॉनेट।
२. लेवर—दि एलिजाबेथन लव सॉनेट, पृष्ठ १२।
३. तदेव, पष्ठ १३।
४. एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, सॉनेट।

मिल्टन ने इटली वाली रूपयोजना को ही (कुछ परिवर्तनों सहित) पसन्द किया और वही वर्ड्सवर्थ ने भी किया। आधुनिक लेखकों ने भी इटली वाली रूपयोजना ही अपनाई है और यहाँ तक कि इटली के यति-प्रसार (एनजेम्बमैंट) को भी खूब अपनाया है[१]।

एलिजाबेथ युगीन सॉनेट

एलिजाबेथ युगीन सॉनेट का प्रचलन अल्पकालीन ही रहा। १५९० से पहले बहुत कम सॉनेट लिखे गये थे। सिडनी के निधनोत्तर प्रकाशित 'एस्टोफेल एण्ड स्टेला' (१५९१) ने एक नये फैशन को जन्म दिया। उसके सॉनेट बड़े आग्रह और आतुरता के साथ पढ़े गये और उन्होंने अंग्रेज़ी कवियों के लिये नई सम्भावनाओं का द्वार खोल दिया। निम्न कवियों के निम्न सॉनेट सग्रह उल्लेखनीय हैं—१५९२ में प्रकाशित डेनिएल का डेलिया'; १५९३ में प्रकाशित वाटसन का 'टियर्स ऑफ फेन्सी', बारनेस का 'पैथेनोफिल एण्ड पार्थेनोप', लाज का 'फिलिस', और फ्लेचर का 'लिसिया'; १५९४ में प्रकाशित कॉसटेबल का 'डायना', परसी का 'सॉनेट्स टु केईलिया'; ड्रेटन का 'आइडियाज मिरर' और अनामांकित 'जेफेरिया'; १५९५ में प्रकाशित स्पेंसर का 'अमोरेती', बार्नफील्ड का 'सिथिया,' बारनेस का 'सैंचुरी ऑफ स्पिरिचुअल सॉनेट्स' और अनामांकित 'अलसीलिया'; १५९६ में प्रकाशित ग्रिफिन का 'फिडेसा' और स्मिथ का 'क्लोरिम'; १५९७ में प्रकाशित हेनरी लोक का 'सैंचुरी ऑफ क्रिश्चियन पेशन,' राबर्ट टोफ्ट का 'लौरा' ब्रेटन का 'आर्बर ऑफ एमरस डिवाइसेज' और १५९८ में प्रकाशित टोफ्ट का 'एल्बा'। इसके बाद सॉनेटों का प्रकाशन कई वर्षों के लिये बन्द हो गया। शेक्सपियर के सॉनेटों की रचना भी प्रायः इसी काल मे हुई होगी, क्योंकि शैली और शब्दावली आदि की दृष्टि से अनेक समकक्ष उदाहरण खोजे जा सकते हैं[२]। इस विषय को यथाप्रसंग लिया जायेगा।

परवर्ती कवियों पर प्रभाव

इन कवियों में से कुछेक ही २-३ सफल सॉनेटो की रचना कर सके। स्पेन्सर भी पूर्णतः सफल न हुए, यद्यपि उन्होंने अपनी रुचि के अधिक अनुकूल रूपयोजना अपनायी थी[३]। इस शैली के सर्वोत्कृष्ट सॉनेट शेक्सपियर के सॉनेट

---

१. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

२. तदेव।

३ एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, सॉनेट।

ही हैं, जो १६०९ में प्रकाशित हुए थे—यद्यपि उनकी रचना बहुत पहले हो चुकी थी (दे० आगे)। बाद में अंग्रेजी कवियों ने विशेषतः मिल्टन ने इस रूपक योजना को छोड़कर पीट्रार्क की शैली को ही अपनाया और उसका 'पैरेडाइज लौस्ट' तक उसमें प्रभावित है। १७४०-८९ के काल में सॉनेट-रचना का प्रचलन ही उठ गया। १७८९ में बाउल्स ने सॉनेट लिखे, जिनका महत्त्व विशेषतः कालरिज और वर्ड्सवर्थ पर उनके प्रभाव के कारण है। कालरिज भी विशेष सफल न हुए, पर वर्ड्सवर्थ ने न केवल इस छन्द को लोकप्रिय बनाया, बल्कि शेक्सपियर के सॉनेटों के अध्ययन के लिये भी पुनः नई प्रेरणा जागृत कर दी और रौसेटी (हाऊस ऑफ लाइफ़), श्रीमती ब्राउनिंग (सॉनेट्स फ्रोम पोर्चुगीज) और मेरेडिथ (मोडर्न लव) को भी प्रेरित किया, यद्यपि उनकी ये रचनायें नियमित सॉनेट शैली पर आधारित नहीं हैं। बाद में भी अनेक सुन्दर सॉनेटों की रचना की गई है[1]। अमेरिका में भी एडना सेंट विंसेंट मिले के 'फैटल इंटरव्यू' और ल्योनार्ड के 'टू लाइव्ज़' विशेषतः उल्लेखनीय हैं[2]।

३

शेक्सपियर की रचनाएँ और सॉनेट

संक्षिप्त जीवन परिचय

विलियम शेक्सपियर का जन्म स्ट्रेटफ़ोर्ड-आन-एवन में अप्रैल, १५६४ में हुआ था और वह जान शेक्सपियर और मेरी आर्डेन की तीसरी सन्तान और सबसे बड़े पुत्र थे। माता-पिता दोनों ही समृद्ध थे। दिसम्बर, १५८२ में उनका विवाह अन्ना हैथावे के साथ हुआ और उनकी पहली सन्तान सौसाना का नामकरण ६ मई, १५८३ को और बाद में जुड़वें हैमनेट और जूडिथ का २२ फरवरी, १५८५ को हुआ। उनके आरम्भिक जीवन के बारे में अनेक अनुश्रुतियाँ हैं—हिरण चुराने के कारण उन्हें गाँव छोड़ना पडा, वह एक अध्यापक थे आदि; पर 'इदमित्थं' कुछ नहीं कहा जा सकता। १५९२ में लार्ड स्ट्रेंज के अभिनेताओं ने हेरी छठे का अभिनय किया, जो 'हेनरी-६' का प्रथमांश था। १५९२ में ही राबर्ट ग्रीन ने 'शेक-सीन' नामक नये नाटककार के बारे में समसामयिक लेखकों को चेतावनी दी, अर्थात् महाकवि ने बड़ी शीघ्रतापूर्वक ख्याति प्राप्त कर ली और एडवर्ड अलेन और मार्लो आदि से सम्पर्क प्राप्त कर लिया। अप्रैल, ९३

१. तदेव।

२. कोलियर्स एन्साइक्लोपेडिया, सॉनेट।

में 'वीनस एण्ड अडोनिस' प्रकाशित हुआ और मई, १५९४ में 'रेप ऑफ लुकरी' दोनों ही अर्ल ऑफ सदेम्पटन को समर्पित किये गये थे। १५९८ में 'ग्लोब' नाट्यशाला की नीव रखी गई, जिसके व्यय का एक भाग शेक्सपियर ने भी दिया। १५९६ में उन्होंने अपने गाँव में 'न्यू प्लेस' नामक भवन खरीदा, अपने पिता के द्वारा होकर हेरालड्स से कोट-ऑफ-आम्स भी खरीदा और इस प्रकार उनकी गणना 'सभ्यों' में होने लगी। १५९८ तक उन्होंने बहुत कीर्ति अर्जित कर ली थी और 'फ्रांसिस मेरेस' ने उनकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए उसके सॉनेटों को भी 'सिता-मधुर' बताया था। १६०३ में रानी एलिजाबेथ के निधन के बाद सम्राट् जेम्स ने कम्पनी को अपने हाथ में ले लिया, और सभी अभिनेता राजपुरुष बन गये। १६०७ में शेक्सपियर ने अभिनय करना छोड़ दिया और वह प्रायः अपने गाँव में ही रहने लगे। २३ अप्रैल, १६१६ को उनका निधन हुआ और इससे प्रायः ४ वर्ष पहले वह पूर्णतः कार्यनिवृत्त हो गये थे।[1]

रचनाओं का काल-निर्णय और मुद्रण

जी० बी० हैरिसन द्वारा दिये गये रचना काल क्रम को यथावत् नीचे उद्धृत किया जा रहा है[2] —

अनुमानित रचना-काल	नाटक	प्रथम मुद्रण
१५९४ से पूर्व	हेनरी-६, तीन भागों में	फोलियो[3]
	रिचर्ड-३	१५९७
	टिटस एण्ड्रोनिकस	१५९४
	लव्स लेबरस लौस्ट	१५९८
	दि टू जैंटिलमैन ऑफ वेरोना	फोलियो
	दि कॉमेडी ऑफ एरर्स	फोलियो
	दि टेमिंग ऑफ दि श्रयू	फोलियो
१५९४-९७	रोम्यो एण्ड जूलियट (चोरी से १५९७)	१६०९
	ए मिड समर नाइट्स ड्रीम	१६००

१. विलियम शेक्सपियर : दि सॉनेट्स एण्ड ए लवर्स कम्प्लेंट—सम्पादक जी० बी० हेरिसन, भूमिका (पेंगुइन सिरीज) पर आधारित।

१. वही।

२. 'फोलियो' संस्करण में शेक्सपियर की रचनाओं का प्रकाशन १६२३ में हुआ था।

	रिचर्ड-२	१५९७
	किंग जान	फोलियो
	दि मर्चेंट ऑफ वेनिस	१६००
१५९७-१६००	हेनरी-४ भाग १	१५९८
	हेनरी-४ भाग २	१६००
	हेनरी-५ (चोरी से १६००)	फोलियो
	मच एड्रू अबाउट नथिंग	१६००
	मेरी वाइव्ज़ ऑफ विंडसर (चोरी से १६०२)	फोलियो
	एज़ यू लाइक इट	फोलियो
	जूलियस सीजर	फोलियो
	ट्रोयलस एण्ड क्रेसिडा	१६०९
१६०१-९	हैमलेट (चोरी से १६०३)	१६०४
	ट्वेल्थ नाइट	फोलियो
	मेजर फौर मेजर	फोलियो
	आल्स वैल दैड एण्ड्स वैल	फोलियो
	ओथेलो	१६२२
	लियर	१६०८
	मैकबेथ	फोलियो
	टिमन ऑफ एथेन्स	फोलियो
	एटनी एण्ड क्लयोपेत्रा	फोलियो
	कोरियोलेनस	फोलियो
१६०८ से बाद	पेरिकिल्स (फोलियो से छूट गया)	१६०९
	सिंबलीन	फोलियो
	दि विंटरस टेल	फोलियो
	दि टैम्पेस्ट	फोलियो
	हेनरी-८	फोलियो
	कवितायें	
	वीनस एण्ड अडोनिस	१५९३
	रेप ऑफ लुकरी	१५९४
	सॉनेट्स ए लवर्स कम्प्लेंट	१६०९
	दि फोनिक्स एण्ड दि टर्टिल	१६०१

सॉनेट रचना-काल

डालीडे[1] ने हाटसन का उद्धरण दिया है कि सॉनेट संख्या १०७, १२३ और १२४ की रचना १५८९ तक हो चुकी थी और यह मानते हुए कि १—१२६ एक कालक्रम में लिखे गये, यह भी निश्चत है कि इनकी रचना १५८९ तक हो चुकी थी। सेमुएल बटलर ने भी प्रथम माला का रचना-काल अप्रैल १५८५—दिसम्बर, १५८८ माना है। १०७ में उल्लिखित घटना का सम्बन्ध हाटसन आरमादा की पराजय से जोड़ते हैं। यह मान लेने पर सॉनेटों को सदेम्पटन और पेम्ब्रोक (दे० आगे 'सम्बोधित व्यक्ति) में से किसी को सम्बोधित नहीं माना जा सकता, क्योंकि तब उनकी आयु क्रमशः १६ और ९ वर्ष ही थी। पीछे (दे० सं० जीवन परिचय) कहा जा चुका है कि १५९८ से पूर्व ही मेरेस ने शेक्सपियर के सॉनेटों की प्रशंसा की थी और साथ ही १५९९ में जेगार्ड ने 'पेशनेट पिलग्रिम' नामक एक कविता-संग्रह में शेक्सपियर के दो सॉनेटों को भी लिया था। प्रथम मुद्रण से पहले भी वे हाथों-हाथ परिचालित थे, परन्तु यह नही कहा जा सकता कि कितने पहले ?[2] पीछे यह कहा जा चुका है कि एलिजाबेथ युगीन सॉनटो का प्रचलन एक सीमित अवधि (१५९२-९८) तक रहा था, अतः शेक्सपियर के सॉनेट भी इसी काल की उपज हैं। सॉनेट १०७ का संकेत या तो वसन्त, १६०३ में रानी एलिजाबेथ के निधन से है, या शरत् १५९६ में सप्तवार्षिक ज्योतिष अवधि से है, जब ज्योतिषियों की सप्राज्ञी विषयक भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुई।[3] सुभग-पुरुष को सम्बोधित प्रथम माला (१-१२६) की रचनावधि कम से कम तीन वर्ष थी या थोड़ी और। सम्भवतः कुछ सॉनेट १५९८ से बहुत पहले अधिकांश १५९८-१६०१ की अवधि में और कुछ १६०१ के भी बाद (रानी एलिजाबेथ के निधन का संकेत मानने पर १०७ निश्चय ही १६०३ में लिखा गया था) लिखे गये। अन्तः-साक्ष्य की दृष्टि से भी कुछ की सरल शैली और भाव-गरिमा कवि की आयु-परिपक्वता का ही संकेत करती है। आरम्भिक नाटकों में शैली और शब्दावली का साम्य खोजकर भी विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसी शब्दावली की कुछ समय (१-२ साल) बाद पुनरुक्ति स्वभावतः सम्भव नहीं, यद्यपि एक विशिष्ट महाकवि के प्रसंग में इस तर्क को विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता। टकर का अनुमान है १५९८-९९ तक 'श्यामा' रमणी को सम्बोधित सॉनेट परिचालित

---

१. एफ० ई० हालीडे—ए शेक्सपियर कम्पेनियन, सॉनेट।

२. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

३. विलियप शेक्सपियर दि सॉनेट्स एण्ड एलवर्स कम्प्लेण्ट—सम्पादक जी० बी० हेरिसन, भूमिका पृष्ठ १७।

हो चुके थे और 'सुभग-पुरुष' को सम्बोधित माला १५९८-१६०१ में (और १०७ संख्या वाला १६०३ में) लिखा गया था अथवा आरम्भिक तिथि को १५९२ माना जा सकता है। एक अन्य विद्वान् उनका रचना-काल १५९३ से १६०३ मानते हैं।[1]

प्रथम मुद्रण

सॉनेट-संग्रह पहली बार २० मई, १६०९ को प्रकाशित हुआ। मुद्रक-पंक्ति थी—

"शेक्सपियर के सॉनेट, पहले कभी न प्रकाशित, लन्दन में जी० एल्ड० द्वारा, टी० टी० (थामस थोर्प) के लिए, जिनका विक्रय विलियम एस्प्ले (कुछ प्रतियों पर जान राइट, क्राइस्ट चर्च गेट निवासी) द्वारा होगा, १६०९।"

और प्रकाशक का समर्पण था—

"इन सॉनेटों के एकमात्र जन्मदाता (प्रापयिता बिगैटर)

श्री० डब्ल्यू० एच को

जिन्हें हमारे शाश्वत-जीवी कवि ने पूर्ण प्रसन्नता और अमरता का वचन दिया है,

और जिन्होंने इस सदाकांक्षी साहसिक के निकट इनके प्रकाशन की इच्छा व्यक्त की है।"

—टी० टी०

प्रतीत होता है कि यह संग्रह शेक्सपियर की अनुमति, जानकारी और निरीक्षण के बिना ही प्रकाशित हुआ था, क्योंकि मुद्रण की भूलें, विरामों की अव्यवस्था और अनेक महत्त्वपूर्ण त्रुटियाँ इसी बात का संकेत करती हैं।[2]

दूसरा संस्करण जान बेनसन द्वारा १६३९ में लाइसेन्स लेने के बाद १६४० में निकाला गया। बेनसन ने सॉनेटों का क्रम बदल दिया, विभिन्न शृंखलाओं के ऊपर छोटे-छोटे शीर्षक भी दे दिये, ३-४ को छोड़ शेष को एक नारी को सम्बोधित मान लिया और एतदर्थ कुछ सम्बोधन शब्द तक बदल दिये। पाठ की दृष्टि से बेनसन का संस्करण विशेष प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, तथापि सम्बोधित व्यक्ति के लिंग के प्रश्न (दे० आगे) को लेकर कालरिज ने जो यह बात कही है कि ये सॉनेट किसी पुरुष को सम्बोधित न होकर किसी ल्योरा या

---

१. दि न्यू सैंचुरी हैंडबुक ऑफ लिटरेचर, सॉनेट।

२. दि वर्क्स ऑफ शेक्सपियर : सानेट्स (आर्डेन शेक्सपियर)—सम्पादक नौक्स पूलर, भूमिका, पृष्ठ ७-८।

ल्योनोरा रमणी को सम्बोधित हैं—उसकी पुष्टि के लिए वह एकाकी नहीं रह जाते।[१] इस दृष्टि से इस पाठ-भेद का भी महत्त्व है।

४

सॉनेटों की समस्याएँ

अनेक समस्याएँ

अंग्रेजी के समग्र कविता-संग्रहों मे शेक्सपियर के सॉनेटों से अधिक विवाद-ग्रस्त कोई अन्य संग्रह नहीं है। कुछ उन्हें विषयनिष्ठ मानते हुए उनमें शेक्सपियर के व्यक्तिगत जीवन की झाँकी देखते हैं और उन्हें महाकवि की संक्षिप्त वैयक्तिक कवितायें बताते हैं।[२] कुछ उनका वैयक्तिक होना ही उनकी विवादग्रस्तता का हेतु मानते हैं, क्योंकि वे शेक्सपियर के जीवन से निकट सम्बद्ध व्यक्तियों को सम्बोधित हैं और यदि उनके बारे में कुछ तथ्य सुनिश्चित हो जायें, तो वे शेक्सपियर के जीवन पर भी विशिष्ट प्रकाश डालेंगे।[३] कुछ विद्वान् उन्हें सर्वथा रूपकात्मक (अलेगोरिकल) मानते हैं। वे किस को सम्बोधित हैं, इस प्रश्न को लेकर भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। व्यक्तियों के निश्चयन के विवाद के साथ ही कुछ लोग कहते हैं कि वे शेक्सपियर ने स्वतः अपने लिए नहीं, बल्कि किसी अन्य व्यक्ति की ओर से उसके लिए लिखे हैं। कुछ विद्वान् उनमें आध्यात्मिक उद्देश्य की खोज करते हैं और उन्हें आदर्श व्यक्ति (स्वयं कवि के उदात्त 'आत्म') को सम्बोधित मानते हैं।[४] कुछ उनके क्रम की प्रामाणिकता पर ही आपत्ति करते हैं।[५] इन सब विवादों के कारण सॉनेटों का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि और अधिक बढ़ गया है। हम कुछ प्रमुख समस्याओं को क्रमशः लेंगे।

विषयनिष्ठता

"इस कुंजी से शेक्सपियर ने किया निज हृदय उद्घाटन'

—वर्ड्सवर्थ

---

१. तदेव, पृष्ठ १५।

२. जान मेसफील्ड—विलियम शेक्सपियर, पृष्ठ १७।

३. विलियम शेक्सपियर दि सॉनेट एण्ड ए लवर्स कम्प्लेंट—सम्पादक जी० बी० हेरिसन (पेंगुइन सीरीज), भूमिका, पृष्ठ १३।

४. दि वर्क्स ऑफ शेक्सपियर : सॉनेट्स (आर्डेन शेक्सपियर) सम्पादक सी० नौक्स पूलर, भूमिका, पृष्ठ ३१।

५. एफ० ई० हालीडे : ए शेक्सपियर कम्पेनियन, सॉनेट।

वर्ड्सवर्थ के साथ ही स्विनवर्न का भी यही मत है। कुछ अन्य विद्वान् उन्हें अंशतः विषयनिष्ठ या आत्म-परक मानते हैं, कुछ उनको बिलकुल आत्म-परक नहीं मानते और कुछ उन्हें, जैसा अभी बताया गया किसी अन्य व्यक्ति के हेतु लिखा गया मानते है। जब कवि स्वयं अपनी ही बात का दूसरे स्थान पर खंडन करने लगता है, तो लोगों को संदेह होने लगता है कि क्या वे वस्तुतः सत्यनिष्ठ हैं? एक स्थान पर वह कवि-गर्वोक्ति में अपने छन्दों को शाश्वत और महान् बताता है, तो दूसरे स्थान पर उन्हें रूखा और निःस्व कहने लगता है, यद्यपि इसका उत्तर कवि के मस्तिष्क के बदलते हुए क्षणों और प्रवृत्तियों के रूप में दिया जा सकता है। यह कहना कि जिस महाकवि ने अपने महान् नाटकों में आत्मोद्घाटन नहीं किया, कविताओं में कैसे कर सकता है—एक असंगत तर्क है। उस युग में जिन पाठकों को यह पता होगा कि वे किन व्यक्तियों को सम्बोधित हैं अथवा किस विशेष परिस्थिति या प्रसंग में लिखे गये हैं, उनके लिए वे शेक्सपियर के जीवन की एक सत्यनिष्ठ झाँकी मात्र होंगे। अत्यन्त सन्देही व्यक्ति भी २९-३२, ४९, ५७, ६६, ७३, ९० और १२० को लेकर यह नहीं कह सकते कि उनमें कवि अपनी बात नहीं कह रहा है। अधिकांश सॉनेट एक विशेष परिस्थिति की बात छेड़ते हैं। यदि ७७, ८६, १०७ १२४-१२५ को 'आत्म' से सम्बद्ध न माना जाये, तो उनका क्या अर्थ होगा? अनेक कवि के व्यवसाय, पद, दुर्भाग्य और असन्तोष आदि पर प्रकाश डालते हैं इन महत्त्वपूर्ण तर्कों के विरोध में जो निम्न तर्क दिये जाते हैं, वे लचर तर्क ही रह जाते हैं—कि उनमें सॉनेट परम्परा के अनुसार केवल काल्पनिक और कृत्रिम स्थितियों का ही वर्णन किया गया है, अधिकांश स्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ आदि सर्व-सामान्य हैं, कई तुच्छ हैं और लगता है कि अनुरोध पर लिखे गये हैं, कई असंगतताओं और नैतिक च्युतियों से भरे पड़े हैं, अधिकांश विवादों और समस्याओं का समाधान यह मान लेने पर हो जायेगा कि वे आत्म-कथात्मक नहीं हैं।[1]

कवि के चरित्र पर प्रकाश

कई सॉनेट कवि के चरित्र और उसके स्वभाव की कई विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। वह बाह्य आडम्बर और नकली बाल लगाने आदि सौन्दर्य प्रसाधनों को पसन्द न करते थे। सॉनेट २१, २३, ८४ और ८५ प्रतिद्वन्द्वी कवि

---

१. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

(सम्भवतः चैपमैन) के प्रसंग में शेक्सपियर की ईर्ष्या पर प्रकाश डालते हैं।[१]

अन्य मत

एल्जे के साथ सहमत होते हुए सिडनी ली का विश्वास है कि सॉनेटों की विषयवस्तु उनकी रूपयोजना की भाँति[२] परम्परागत है। वैयक्तिक स्पष्टीकरण की कठिनाई से बचने के लिए कुछ आलोचक उन्हें रूपकात्मक (अलेगोरिकल) मानते हैं और उनका कहना है कि वे अमूर्त विषयों या प्रमुख शक्तियों का निरूपण करते हैं। उदाहरणस्वरूप शेक्सपियर को प्रोटैस्टेन्ट-मत का अग्रणी बताया जाता है और 'असद् प्रेत' का अभिप्राय ब्रह्मचर्यवादी धार्मिक मत से जोड़ा जाता है और 'सद् देवदूत' का अभिप्राय सुधारवादी धार्मिक मत से जोड़ा जाता है। तदनुसार जैसा पीछे कहा जा चुका है कुछ लोग मानते हैं कि सॉनेट आदर्श पुरुष को सम्बोधित हैं जो स्वयं शेक्सपियर का उदात्त स्वरूप है, या उसका आध्यात्मिक 'आत्म' है और श्यामा स्त्री कवि की 'वाणी' है या वे मूर्तस्वरूप प्राप्त कर लेने वाली 'आत्मा' को सम्बोधित हैं। जिससे सॉनेटों की विषयवस्तु सार्वजनीन हो जाती है। इन सारे सिद्धान्तों के प्रतिपादन में की गई खोज पूलर के मत से अध्यवसाय और प्रतिभा का सर्वथा दुरुपयोग है। दूसरी ओर वे चाहे कितने विषयनिष्ठ हों, वे शेक्सपियर के जीवन के कुछ अनुभवों का ही चित्रण करते हैं, उसकी पूरी झाँकी प्रस्तुत नहीं करते।[३]

५

सम्बोधित व्यक्ति

जन्मदाता या प्रापयिता

सबसे अधिक विवादग्रस्त प्रश्न है कि वे किसको सम्बोधित हैं। वस्तु से पता चलता है कि अधिकांश एक पुरुष को सम्बोधित है और शेष एक स्त्री को, परन्तु यद्यपि इस प्रश्न पर अनेक मत हैं, तथापि अभी तक निर्विवाद रूप से

---

१. शेक्सपियरः पोर्ट्रेट रेस्टोर्ड—क्लेरा लौंगवर्थ डि शेम्बून, पृष्ठ ९९-१२२

२. एलिजाबेथन सानेट्स : सिडनी ली, भूमिका।

३. दि वर्क्स ऑफ शेक्सपियर : सॉनेट्स (आर्डेन शेक्सपियर)—सम्पादक सी. नौक्स पूलर, भूमिका पृष्ठ ३१-३२, ३४।

कुछ निर्धारित नहीं किया जा सका है।[1] पहला प्रश्न तो यही है कि थोमस थोर्प ने 'बिगैटर' शब्द जन्मदाता के लिए प्रयुक्त किया है या प्रापयिता के लिए।[2] श्री डबल्यू० एच०, सॉनेटों के जन्मदाता थे या केवल प्रापयिता, क्या वह सॉनेटों द्वारा सम्बोधित 'सुभग युवा' हैं अथवा प्रकाशक थोर्प के लिए सॉनेटों को उपलब्ध कर देने वाले प्रापयिता मात्र ? फिर 'बिगैटर' के साथ 'ओनली' शब्द भी है, जिसका अर्थ सम्बोधित व्यक्ति की दृष्टि से उचित नहीं बैठता, क्योंकि सभी सॉनेट एक मात्र उन्हीं को सम्बोधित नही हैं। इस दृष्टि से कुछ विद्वान् 'ओनली' का अर्थ 'केवल मात्र' न करके 'अधिकांश' करते है[2] चेम्बर्स और आइवर ब्राउन दोनों इस पर सन्देह करते है कि 'सॉनेट' केवल प्रापयिता (पुस्तकों के दलाल) को ही सम्बोधित कर दिये जायें और उसे ही पूर्णप्रसन्नता और अमरता का वरदान दिया जाये।[3] यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं है कि शेक्सपियर ने सॉनेट श्री डबल्यू० एच० के अनुरोध पर किसी दूसरे के लिए लिखे थे। कोई भी प्रकाशक दलाल या आजीव्य को समर्पण नही कर सकता, या कम से कम महाकवि शेक्सपियर ऐसे व्यक्ति के लिए पूर्ण प्रसन्नता और अमरता का वरदान नही दे सकते।

नैतिक औचित्य और पुरुष को सम्बोधन

इसके पहले कि सम्बोधित व्यक्ति के नाम पर विचार किया जाये, हम यहाँ पर एक और प्रश्न निपटा देना चाहते हैं। शेक्सपियर द्वारा एक सुभग युवा (पुरुष) के प्रति इन सॉनेटो में प्रकट किये गए प्रेम के नैतिक औचित्य पर कई विद्वानों ने आपत्ति की है। पीछे कहा जा चुका है कि बेनसन ने अपने संस्करण में पुरुष के सम्बोधन 'स्त्री' के लिए बदल दिये थे। और कालरिज भी इसी विचारधारा के समर्थक थे। स्वयं अनुवाद मे मैंने सभी सम्बोधन स्त्री-वाची रखे थे और मेरा विचार था कि कम से कम भारत के प्रसंग में स्त्रीवाची' होना ही अधिक उपयुक्त है, परन्तु आदरणीय बच्चन जी के परामर्श से मैंने उन्हे प्रूफ-शोधन के समय पुंवाची बना दिया, क्योंकि अपनी परिस्थितियों के लिए महाकवि के भावों में इतना बड़ा परिवर्तन महाकवि के

---

१. दि न्यू सैचुरी हैंडबुक ऑफ लिटरेचर, सॉनेट। और दे० ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑफ इंगलिश लिटरेचर, सॉनेट।

२. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

३. शेक्सपियर, आइवर ब्राउन, पृष्ठ २००।

प्रति अन्याय होता। आइवर ब्राउन का कथन है कि एलिजाबेथ युगीन कवि के लिए (इटली के पुनर्जागृति-युग की भाँति) सुभग किशोर के प्रति अनुराग एक साहित्यिक फैशन ही था और दो पुरुषों के पारस्परिक प्रेम को प्रोत्साहित ही किया जाता था—दबाया नहीं जाता था। लैली के यूफयस और सर टामस ब्राउन के 'रिलीजिओ मैडिसी' से उद्धरण देते हुए टकर भी इसी का समर्थन करते हैं। वह कुछ अन्य उदाहरण भी देते हैं, जैसे लैग्वेट द्वारा सिडनी को लिखा गया पत्र और बार्नफील्ड द्वारा गेनीमेड को सम्बोधित सॉनेट (जो सौन्दर्य और प्रेम के निरूपण में शेक्सपियर के समान ही हैं)। शेक्सपियर पूर्ण निरीहता के साथ एक ऐसे सुन्दर मित्र के प्रति अनुरक्त हैं, जिसे कई युवतियाँ प्यार करती है। आइवर ब्राउन के मत से दो युवकों का परस्पर-अनुराग नैतिक भ्रष्टता नहीं, बल्कि रुचि की भ्रष्टता मात्र है।[1] लीवर का भी मत है कि पुनर्जागृति युगीन इटली में इस प्रकार के अनेक उदाहरण है और बैम्बो और कैस्टीलोइन ने इसे प्लेटोनिक-प्रेम तक ले जाने वाला एक सोपान कहा है। यह सम्पर्क उस स्थिति में और भी घनिष्ठ हो जाता था, जब दोनों में से एक कवि और दूसरा संरक्षक होता था। मेरोफिनो की नेपोलिटन ड्यूक के प्रति निष्ठा, टासो का ड्यूक ऑफ फेरारा के प्रति अनुराग, स्पेन्सर का लार्ड ग्रे के प्रति यावज्जीवन प्रेम, इसके उदाहरण है।[2]

(१) हेनरी रिओथेसली, अर्ल ऑफ सदेम्पटन

'श्री डबल्यू० एच०' के निर्णय में सबसे पहला नाम हेनरी रिओथेसली, अर्ल ऑफ सदेम्पटन का आता है। दो आरम्भिक आपत्तियों—'श्री' (मिस्टर) लगाया जाना और और आद्याक्षरों का विपर्यय—का विशेष महत्त्व नहीं है, पहली बात तो पेम्ब्रोक (अगला नाम) पर भी लागू होती है और सम्भवतः अर्ल बनने से पहले के तरुण-अनुराग का स्मारक है और दूसरी शायद परिचय को छिपाने की दिशा में एक प्रयत्न है। यद्यपि टकर को यह उपयुक्त नहीं जंचता और उनका तर्क है कि यदि सम्बोधित व्यक्ति अपना नाम सकेत में सुझाया जाना पसन्द करता था, तो प्रकाशक द्वारा आद्याक्षरों के विपर्यय ने उसे निरर्थक कर दिया। सदेम्पटन बहुत सुन्दर था और उसकी मुखाकृति अपनी माँ से बहुत मिलती-जुलती थी, जैसा आज तक विद्यमान चित्रों से स्पष्ट है।[3] उसके

१. तदेव पृष्ठ २०८, ११०।

२. दि एलिजाबेथन लव सॉनेट-जे० डबल्यू० लीवर पृष्ठ १६४-१६५।

३. शेक्सपियर : पोर्ट्रेट रेस्टोर्ड—क्लेर लौंगवर्थ डे शेम्बून, पृष्ठ ९९-१००।

पिता की मृत्यु हो चुकी थी और उससे विवाह करने के लिए आग्रह किया जा रहा था। अपने संरक्षक लार्ड बर्गली के अनुरोध पर भी वह विवाह के लिए स्वीकृति न दे सका, बाद में सम्राज्ञी की एक परिचारिका (मेड ऑफ आनर) से गुप्त विवाह कर लिया। लार्ड एसेक्स का समर्थक होने से उसे जेल हुई और एलिजाबेथ के निधन पर वह जेल से छूटा। शेक्सपियर ने अपने दो प्रथम कविता-संग्रह इसे ही समर्पित किये थे (दे० पीछे सं० जीवन परिचय)।

(२) विलियम हर्बर्ट, अर्ल ऑफ पेम्ब्रोक

दूसरा नाम विलियम हर्बर्ट, अर्ल ऑफ पेम्ब्रोक का है और वस्तुतः मूल विवाद सदेम्पटन और पेम्ब्रोक को ही ले कर है। प्रथम फोलियो के सम्पादक हैमिग और कांडेल ने १६२३ में यह संस्करण पेम्ब्रोक और उसके भाई को ही समर्पित किया है और कहा है—'चूँकि आप दोनों महामहिमों ने इन पर और कवि के जीवन-काल में कवि पर विशेष अनुग्रह दिखलाया था।' सर जार्ज कैरी की पुत्री से इसकी सगाई की भी बात चली थी, पर इसके आगे क्या हुआ यह पता नही चलता।[1]

उक्त दोनों मतों के पक्ष-विपक्ष

हर्बर्ट सम्बन्धी आपत्तियों का उत्तर टकर ने दिया है। 'विल' (विलियम का सकेत और 'इच्छा' वाचक) सम्बन्धी सॉनेट १३५,१३६ और १४३ पेम्ब्रोक पर खरे उतरते हैं। सम्भवतः कुछ सॉनेट हर्बर्ट से कवि की मैत्री से पहले लिखे गये हों। उसके काले बाल बचपन में सुनहले रहे होंगे। दूसरी ओर सदेम्पटन पर उसकी निम्न आपत्तियाँ या व्याख्यायें हैं—तिथियों का कोई निर्धारण सम्भव नहीं, पहले कविता संग्रह जिसे समर्पित हों-सॉनेट भी उसे ही समर्पित हों, यह कोई तर्क नहीं, सदेम्पटन के प्रति कवि के गहरे अनुराग का अर्थ यह नहीं कि उससे गहरा अनुराग पेम्ब्रोक के प्रति नहीं हो सकता, आयु अधिक होने से सदेम्पटन को 'सुभग बाल' नहीं कहा जा सकता, आद्याक्षर विपर्यय अनोखी बात है, भले ही वह सर्वाधिक सुन्दर हो पर यह तो कवि की अपनी बात है कि वह किसे सुन्दर समझता है, आदि। दूसरी ओर हैरिसन का विचार है कि अब सदेम्पटन

---

१. विलियम शेक्सपियर ए स्टडी ऑफ फैक्ट्स एण्ड प्रौब्लम्स—ई० के० चैम्बर्स।

२. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर : सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

सम्बन्धी मत विशेष दृढ़ हो गया है।[१] यहाँ पर इस विस्तृत और गहन विवाद की एक परिचयात्मक झाँकी ही दी गई है।

अन्य मत : (३) विलियम ह्यूज

उक्त दोनों के विषय में आज तक किसी निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सका है। दूसरी ओर कई अन्य व्यक्ति भी इस डवल्यू० एच० की मीमांसा में सामने आ गये हैं। इनमें से पहला नाम सैमुएल बटलर ने विलियम ह्यूज़ नामक युवा अभिनेता का बताया है, जिसमें नारी सा सौन्दर्य था और जो नायिकाओं की भूमिका किया करता था। इसके बारे में और तथ्यों का पता नहीं चलता, केवल सॉनेट २० पंक्ति ७ को इसके समर्थन में प्रस्तुत किया जाता है—

'ए मैन इन ह्यू आल ह्यूज इन हिम कंट्रोलिंग'

(४) विलियम हार्वे

एक नाम (शायद सर) विलियम हार्वे का है, जिसने सदेम्पटन की माँ से विवाह किया था। उसे पांडुलिपि भी प्राप्त हो सकती थी।

(५) विलियम हाल

फ्रेडरिक राबर्ट साउथवेल के धार्मिक सॉनेटों के समर्पण में आये डवल्यू० एच० का सम्बन्ध हाल से जोड़ कर कुछ लोग उसे ही सॉनेटों में सम्बोधित मानते हैं। परन्तु आद्याक्षरों के अतिरिक्त और कोई साक्ष्य नहीं है।

(६) विलियम हार्ट

पूलर फार्मर की इस अटकल का उद्धरण देते हुए शेक्सपियर के इस भतीजे का भी नाम लेता है, परन्तु उसका जन्म १६०० में हुआ था।

कुछ अन्य मत भी हैं। एक विद्वान् का विचार है कि वे सम्राज्ञी एलिजाबेथ को सम्बोधित थे! एक सज्जन का विचार है कि वे शेक्सपियर द्वारा लिखे ही नहीं गये थे बल्कि एक अन्य प्रख्यात समकालीन व्यक्ति रैले (जो 'पंगु' था) द्वारा लिखे गये थे अथवा प्रसिद्ध विचारक बेकन द्वारा लिखे गये थे।[२] दूसरी ओर हैरिसन का विचार है कि यह भी सम्भव है कि ये सभी मत गलत हों और

---

१. विलियम शेक्सपियर दि सॉनेट्स एण्ड ए लवर्स कम्प्लेन्ट, भूमिका पृष्ठ १६।

२. दि वर्क्स ऑफ शेक्सपियर : सॉनेट्स (आर्डेन शेक्सपियर)—सम्पादक सी० नौक्स पूलर, भूमिका पृष्ठ २७।

सम्बोधित युवा कोई सर्वथा भिन्न व्यक्ति हो ।[1]

श्यामा सुन्दरी

सॉनेट १२७-१५२ एक श्यामा सुन्दरी को सम्बोधित हैं। (सॉनेट १५३-१५४ परम्परागत कामदेव सम्बन्धी प्रेम-गीत हैं।) इस सुन्दरी का शेक्सपियर के जीवन से विशेष सम्पर्क था क्योंकि नाटकों में भी इसका वर्णन मिलता है। उसके बालों की तुलना सॉनेट १३० में तारों से की गई है—

यदि कच तार, तार श्यामल उगते उस सिर पर वाम।

उसके काले नेत्रों का भी विशिष्ट वर्णन किया गया है। उसके कारण सौन्दर्य को ही काला बताया गया है—

तो मैं कह दूँगा सशपथ काला होता सौन्दर्य।

और उसका श्यामल कवि के लिये सुन्दरतम है—

तेरा श्यामल मेरे निर्णय से सुन्दरतम, प्यार!

थोड़ा सा विवाद इस 'स्त्री' को लेकर भी है। हैरिसन ने दो महिलायें सुझाई हैं—१५९० में सुप्रसिद्ध एक अत्यन्त श्यामांगी वारांगना और दूसरी क्लर्केनवैल की साधुनीशाला (ननरी) की एक 'लूसी नीग्रो' साधुनी। एक अन्य सज्जन उसका सम्बन्ध 'गोल्डेन क्रास' होटल की आकर्षक परिचारिका से जोड़ते हैं।[2] कुछ लोग इस श्यामांगी को काल्पनिक-मात्र मानते हैं। इसके उत्तर में टकर का विचार है कि विवरण और वर्णन इतने पूर्ण तथा वैयक्तिक हैं कि उसे अवास्तविक नहीं कहा जा सकता। कवि उसकी 'स्वाभाविकता' के कारण उस पर आकर्षित है और उसे कृत्रिम प्रसाधनों पर आपत्ति है। उसके कृत्य अवश्य काले हैं—वह स्वेच्छाचारिणी है। ऐसी ही अनेक बातों पर ध्यान देते हुए कोई भी गम्भीर पाठक इन सॉनेटों के गहन आत्मानुभव और वेदना-मिश्रित प्रेम से इनकार नहीं कर सकता।[3]

६

सॉनेटों का रचना-क्रम

क्रमबद्धता अथवा क्रमहीनता

एक अन्य प्रमुख समस्या इन सॉनेटों के क्रम की है। बेनसन द्वारा अपने

---

१. विलियम शेक्सपियर: दि सॉनेट्स एण्ड ए लवर्स कंप्लेंट (पेंगुइन)—सम्पादक जी० बी० हैरिसन, भूमिका और टिप्पणियाँ।

२. शेक्सपियर: पोर्ट्रेट रैस्टोर्ड—क्लेरा लौंगवर्थ डे शैम्बून, पृष्ठ १०९।

३. दि एलिजाबेथन लव सॉनेट—जे० डबल्यू० लीवर, पृष्ठ १८१।

संस्करण में बदले गए क्रम का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। प्रश्न यह है कि जिस महाकवि के नाटक अपने गठन-स्थापत्य के लिये इतने प्रसिद्ध हैं, उस के सॉनेट जिस क्रम में आज हमें मिलते हैं, क्या वह उनका वास्तविक क्रम है और क्या यह क्रम कोई शृंखलाबद्ध कहानी कहता है ? सिडनी की 'आर्केडिया' और स्पेंसर की 'फेरी क्वीन' में एक विकास-सातत्य हमें देखने को मिलता है, यद्यपि वे गठन-स्थापत्य के लिये प्रसिद्ध नहीं हैं।[१] वस्तुतः एक क्रमयोजना खोजने के सभी प्रयत्न असफल हुए हैं, क्योंकि ये मुक्तक सॉनेट किसी क्रमबद्ध कहानी का निरूपण नहीं करते।

रचना काल-क्रम अथवा विषय

आज यह नहीं कहा जा सकता कि थोमस थोर्प ने इनको किस क्रम में प्राप्त किया था। रचना काल के क्रम से उनका संभादन सिद्ध करने के प्रयत्न भी सफल नहीं हुए और न विषय की ही दृष्टि से। संभवतः बिना विशेष कठिनाई के उन्हें विषयवार पुनः व्यवस्थित किया जा सकता है। संभवतः वे टुकड़ों में थोर्प के हाथ आये होंगे और उसने अपने संग्रह में उन्हें अपने पास आने के क्रम में रख दिया तथा किसी क्रम की व्यवस्था करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।[२]

जान बेनसन की क्रम-व्यवस्था

बेनसन ने थोर्प के संस्करण का अनुकरण न करके सॉनेटों का क्रम बदल दिया। इस प्रकार सॉनेट ६७ पहला बनकर सामने आया। उसने सॉनेटों के समूह बाँटकर उनके ऊपर विषयवार शीर्षक भी दे दिये, यथा—'एक कर्त्तव्य निष्ठ सन्देश', 'लम्बी अनुपस्थिति के लिये प्रेमी का स्पष्टीकरण' आदि। उसने पुरुष वाचक सर्वनाम भी बदल कर उन्हें स्त्रीवाची बना दिया। थोर्प के संस्करण से अनेक परिवर्तन बेनसन ने बिना किसी विशेष प्रयोजन के ही कर दिये।

डाउडेन की क्रम-योजना

डाउडेन के विचार से ये सॉनेट एक क्रमबद्ध कहानी कहते हैं। उसका कहना है कि इन्हें कई समूहों में बाँटा जा सकता है, परन्तु १-३२, ३३-४२, ४३-७४,७५-९६,९७-९९ और १००-१२६ को एक साथ पढ़ने में कोई बाधा

---

१. दि एलिजाबेथन ल० सॉनेट—जे० डबल्यू० लीवर, पृष्ठ १६९।
२. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—संपादक टी० जी० टकर, भूमिका।

नहीं होती।[1] उसने अनेक सॉनेटों की महत्त्वपूर्ण समानताओं पर भी प्रकाश डाला है, परन्तु उसका विचार स्वीकार कर लेना सहज नहीं है।[2]

सॉनेटों की कहानी

प्रस्तुत क्रम में भी सॉनेट मोटे तौर पर एक कहानी ही कहते हैं। १ से १७ एक युवक को विवाह और प्रजनन के लिये प्रेरित करते हैं और १८ से १२६ विभिन्न विषयों, प्रवृत्तियों, परिस्थितियों में उसके प्रति कवि के प्रेम का निरूपण करते हैं। १८-२० उसके सौन्दर्य का, २३ कवि की नवपरिचयजन्य संकोचपूर्ण अभिव्यक्ति का, २७ यात्राजन्य वियोग का, २९ प्रेम के अतिरिक्त सभी बातों में उसके सर्वथा वंचित होने का, ३६ हृदय-स्वामी को कवि के प्रति सार्वजनीन समादर देने से रोकने का, ४०-४२ मित्र द्वारा हृदय-स्वामी के चुराये जाने और कवि की क्षमा का, ४७-४९ कवि द्वारा युवक का चित्र यात्रा में ले जाने का, ७३ कवि की वृद्धता का, ७८-८६ प्रतिद्वन्द्वियों पर युवक के अनुग्रह के प्रति ईर्ष्या का, ९६ कवि द्वारा युवक को स्वेच्छाचारिता के लिये झिड़कने का, ९७-९८ वसन्त-ग्रीष्म में वियोग के बाद कवि के वापस आने का, १०७ युवक के 'सावधि दुर्भाग्य' का, १०९ वियोग के बाद पुनः सम्मिलन का, ११०-१११ अपनी वृत्ति पर कवि के खेद का, ११७ युवक की दृष्टि बदलने पर उसकी ओर से बचाव का और १२२ युवक द्वारा दी गई भेंट-पट्टिका के विसर्जन पर क्षमा-याचना का वर्णन करते हैं। १२७-१५२ एक श्यामांगी को संबोधित हैं, जो स्वैरिणी है, शरीर से अनाकर्षक है, अपने पातिव्रत्य (शय्या-व्रत) को तोड़ने वाली है—फिर भी अनिवार्य रूप से स्पृहणीय है। १५३-१५४ प्रेम देव मदन (क्यूपिड) को संबोधित परम्परागत प्रेम गीत हैं।[3] इतने पर भी यदि कोई युक्तिसंगत क्रम व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है, तो उसका उत्तर यह है कि इनके प्रकाशन के लिये स्वयं शेक्सपियर उत्तरदायी न थे और संभवतः उसकी जानकारी और अनुमति के बिना ही इन्हें मुद्रित किया गया था। मूल पाठ की अनेक बातों से इसकी पुष्टि हो जाती है।[4]

---

१. शेक्सपियर—डाउडेन।

२. दि वर्क्स ऑफ़ शेक्सपियर : सॉनेट्स (आर्डेन शेक्सपियर)—संपादक सी० नौक्स पूलर, भूमिका पृष्ठ २८।

३. विलियम शेक्सपियर : दि सॉनेट्स एण्ड ए लवर्स कंप्लेंट—सपादक जी० बी० हैरिसन, भूमिका पृष्ठ १४-१५।

४. दि एलिजाबेथन सॉनेट—जे० डवल्यू० लीवर, पृष्ठ १७१।

७

सॉनेटों सम्बंधी कुछ अन्य बातें

कृत्रिमता और रीतिपरता

एडवर्ड थामस का विचार था कि सॉनेट के लिये विहित बन्धनों की दृष्टि में जो व्यक्ति इन बन्धनों और शर्तों के अधीन रहते हुए भी सफलतापूर्वक रचना कर सकता है और अपने भावों को सम्यक्तया अभिव्यक्त कर सकता है, वह या तो एक महामहिम महाकवि है या एक महान् गणितज्ञ।[1] एक अन्य विद्वान् के विचार से शेक्सपियर की भयंकर कला-कृत्रिमता उसके सॉनेटों की एक बड़ी दुर्बलता है।[2] सॉनेट गीति-काव्य की एक विशेषीकृत शैली है। शब्दालंकारों के खिलवाड़ भी सॉनेट-परम्परा के अनिवार्य अंग हैं। शेक्सपियर के यमक और शब्द श्लेष अनेक पंक्तियों को जटिल बना देते हैं और कुछ विद्वानों के विचार से वे उस महाकवि की कला का नही, बल्कि कृत्रिमता का प्रदर्शन करते हैं। यह ठीक है कि शेक्सपियर के सॉनेटों में हमें शाब्दिक खिलवाड़ के कई रूप देखने को मिलते हैं, पर वे प्रायः कवि के भावावेश की एक आन्तरिक लहर से अनुप्राणित और अनुस्यूत होते हैं और वे न तो अनिच्छापूर्वक और अनचाहे रूप में सामने आते हैं और न इच्छापूर्वक मनमाने ढंग से, बल्कि उनको अत्यन्त कौशलपूर्वक निपटाया जाता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

प्रोफिटलैस यूजरर, ह्वि ई डस्ट दाउ यूज़
(४)
बैट यूज़ इज नौट फोरबिडेन यूज़री
(६)
एंड कैप्ट अन-यूज्ड, दि यूज़र सो डैस्ट्रोइज इट
(९)

× × ×

ह्विच हस्बैंडरी इन आनर माइट अपहोल्ड
(१३)

× × ×

---

१. दि एलिजाबेथन सॉनेट—जे० डबल्यू० लीवर, पृष्ठ १६२।
२. शेक्सपियर्स वर्डप्ले—एम० एम० माहूद, पृष्ठ ९१।

दियर फोर आई लाई विद हर एंड शी विद मी
लव्ज आई इज नौट सो ट्रू एज औल मैन्स नो
(१३८)

और—'विल' सम्बंधी सॉनेट १३५-१३६।

कुछ अन्य बातें भी सॉनेटों को जटिल बना देती हैं, जैसे विशेषणों का संघनीकृत उपयोग (ओल्ड एक्सक्यूज़, जहाँ अभिप्राय बुढ़ापे के कारण बहाना बनाना है, या आल-ईटिंग शेम, जहाँ अभिप्राय सब कुछ खा जाने की लज्जा से है।) कुछ अन्य शब्दालंकार भी देखें—

टु गिव अवे योरसैल्फ कीप्स योरसैल्फ स्टिल
× × ×
दिस वाज़ टु बी मेड न्यू ह्वैन दाउ आर्ट ओल्ड
× × ×

कुछ विशेष समासों पर आग्रह, यथा—पजैट-एब्सैट, मास्टर-मिस्ट्रेस, पिटी-वांटिंग आदि। साथ ही पुनरुक्तवदाभास (आग्जीमोरन) पर आग्रह, यथा—स्पीचलैस सौंग, डम्ब प्रिसेजर्स, साइटलैस व्यू।

ये कृत्रिमतायें और शाब्दिक अलंकारों की यह छटा उस युग की माँग भी थी, अतः शेक्सपियर को इनके लिये विशेष दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह अलग बात है कि शब्दालंकारों का अनुवाद सर्वथा असंभव होने के कारण ऐसी पंक्तियों के अनुवाद में विशेष कठिनाई का सामना एक अन्य भाषा के अनुवादक को करना पड़ता है। इसे अनुवाद की कठिनाइयों के प्रसंग में लिया जायेगा।

'तू' या 'तुम' का उपयोग

दूर और निकट के तारतम्य से शेक्सपियर के 'तू' और 'तुम' सर्वनामों के प्रयोगों की विशेषता को खोजने के सभी प्रयोग असफल सिद्ध हुए हैं। पुरानी कवि परम्परा 'तू' को पसन्द करती थी। शेक्सपियर ने कुछ स्थलों पर उसे अपनाया है, अन्य स्थलों पर नहीं। 'तू' और 'तुम' का यह अनिश्चय यूफ्यस में भी देखने को मिलता है।[1] इस अनुवाद में भी इसको कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।

शेक्सपियर की रूपयोजना

शेक्सपियर एकरूपता के दास नहीं हैं। नवीं पंक्ति पूर्वगत आठ पंक्तियों

१. दि सॉनेट्स ऑफ शेक्सपियर—सम्पादक टी० जी० टकर, भूमिका।

के भाव के पल्लवन के साथ ही उसकी कार्यान्विति भी आरम्भ कर देती है, कभी-कभी उसमें उठाई गई बात का उत्तर भी देने लगती है, परन्तु प्रायः वही विचार आगे पल्लवित किया जाता है। हाँ, अन्तिम द्विपाद पूर्वगत १२ पंक्तियों के प्रतिपाद्य का एक संक्षिप्तयोजन होता है। तुकों की दृष्टि से भी महाकवि ने पूरी स्वाधीनता अपनाई है और कुछ तुकें तो अन्तिम अक्षरों (सिलेबिल) की आवृत्ति न होकर केवल शब्दसाम्य मात्र रह गई हैं। परन्तु इसके लिये उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि एलिजाबेथ युगीन प्रायः अन्य सारे कवि भी इसके अपवाद न थे।

पूर्ववर्तियों का ऋण

शेक्सपियर की महानता के जिस निर्णय से हम आज अभिभूत हैं, उसे हमें पुराने युग में समकालीन व्यक्तियों पर शेक्सपियर की वरिष्ठता सिद्ध करने अथवा उन्हें मूल लेखक और शेष सबको अनुकर्त्ता सिद्ध करने के लिये लागू नहीं करना चाहिए। अपने रचना-काल के आरम्भिक युग में शेक्सपियर ने अपने समकालीन सामान्य लेखकों से भी भाषा और वस्तु की दृष्टि से कुछ बातें ऋण स्वरूप ली हैं। टकर ने प्लूटार्क, हौलिनशेड और यूफ्यस का प्रभाव सोदाहरण शेक्सपियर के सॉनेटों में सिद्ध किया है।[1] ड्रेटन और शेक्सपियर की परस्पर-ऋणिता के विषय में भी मतभेद है और फ्ली, सिडनी और डीन बीचिंग का विचार शेक्सपियर को अधमर्ण ठहराने के पक्ष में है और पूलर इससे सहमत हैं, तथापि अनेक विद्वान् शेक्सपियर को उत्तमर्ण ठहराते हैं। एल्टन का विचार है कि दोनों में उपलब्ध होने वाली विचित्र समता सर्वांशतः आकस्मिक नहीं हो सकती, किन्तु कौन ऋणी था, इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता, जब तक हम केवल इतना ही जानते हे कि शेक्सपियर के कुछ सॉनेट १५९८ से ही निजी रूप से परिचलन में आगये थे।[2]

८

सॉनेटों में शेक्सपियर का दार्शनिक दृष्टिकोण

प्लेटो का प्रभाव

विधम का विश्वास है कि शेक्सपियर पर प्लेटो का प्रभाव स्पष्ट है। प्लेटो

---

१. तदेव।

२. दि वर्क्स ऑफ शक्सपियर : सॉनेट्स (आर्डेन शेक्सपियर)—संपादक सी० नौक्स पूलर, भूमिका, पृष्ठ ३८।

के विचार-सिद्धान्त से शेक्सपियर के प्रभावित होने के उदाहरण स्वरूप सॉनेट ४४ उद्धृत किया जाता है—

सार-तत्व मम मांस का अहो ! होता कहीं विचार,
घातक दूरी रोक न पाती तो मेरा पदचार
× × ×
क्षिप्रग क्योंकि विचार भूमि सागर सकता कर पार,
× × ×
यह विचार ले रहा प्राण पर मैं हूँ हा ! न विचार ।

यह संभव है कि महाकवि शेक्सपियर प्लेटो के इस सिद्धान्त के सन्निकट परिचय में न आये हों, तथा एक महाकवि की ग्राहिका और सतर्क बुद्धि से कुछ प्रचलित सिद्धान्त अनभिज्ञ रह सके हों, यह भी संभव नहीं हैं ।

तत्त्व

सॉनेट ४४-४५ में शेक्सपियर ने तत्त्वों की चर्चा छेड़ी है । वे तत्त्व हैं— पृथ्वी, पानी, वायु और आग (भारतीय दर्शन पाँचवा तत्त्व 'आकाश' को मानता है, पर पाश्चात्य दर्शन में इन्हीं चार का निरूपण है) इन चार में से शेक्सपियर के मत से पहले दो मन्दगति और शेष क्षिप्रग है—

पर इतने पृथिवी-पानी ने मम गति रक्खी रोक ।
× × ×
मिला मन्दगति तत्त्वों से कुछ नहीं चित्र विश्राम ।
× × ×
तत्त्व शेष दो रहते हलकी वायु, दहकती आग
× × ×
दोनों क्षिप्रग तत्त्व चले जाते जब ये परदेश
× × ×
शेष रहे दो बनी चार तत्त्वों से मेरी देह
× × ×

काल और अमरत्व

काल के दुर्दान्त हँसिये के कर्त्तन व्यापार पर और उसके कारण सौन्दर्य की दुर्गति पर भी सॉनेटों में विशेष और अनेकविध प्रकाश डाला गया है और शेक्सपियर ने अनेक बार उसकी चर्चा की है । सॉनेट १-१७ तो 'काल' के

कृत्यों के ही कारण युवक से विवाह और सृष्टि-निर्माण करने का अनुरोध करते हैं :

किन्तु काल जब चुन ले मुरझा, फूला कुसुम-कलाप
(१—३

× × ×

क्योंकि अनुपरत काल ग्रीष्म को देता बिलकुल भेंट
(५—५)

× × ×

काल-पाश से कोई भी पा सकता कभी न त्राण
(१२—१३)

× × ×

जिसके हित कर रहा नाश के साथ कि काल विवाद

× × ×

करूँ तुम्हारे प्रेम हेतु काल से घोर संघर्ष
काल निकाले कुछ तुमसे मैं भरूँ नया उत्कर्ष
(१५—११,१३,१४)

कभी वह उससे अनुरोध करता है—

मत रंगना मेरे प्रिय की भ्रू निज गति से अपरूप
(१९—९)

और फिर उसे चुनौती देता है—

वृद्ध काल फिर भी करले जो कुछ कर सके बिगाड़,
फिर भी चिर नव प्यार जियेगा मम छन्दों की आड़।
(१९—१३,१४)

वैसे उसे काल की चिन्ता भी अपने प्रिय के ही कारण है—

कैसे मन्द अनन्त काल का कर सकता अपमान,
जब मेरे स्वामी, तेरी घड़ियों का रखता ध्यान।
(५७—५,६)

काल का कर्त्तन व्यापार देखिये—

काल मिटा देता वह यौवन बाह्य लेप अनुदार
सुन्दर छवि समरेखाओं में खोद गर्त अनुदार
और प्रकृति आदर्श खाद्य का है करता आहार
तनिक न बचता, उसका है भीषण कर्त्तन-व्यापार।

वह प्रिय का रूप अपनी कला-रेखाओं से इसी लिये अंकित कर रहा है कि काल के विनाशकार्य से पूर्व का रूप सदा के लिये अंकित बना रहे। उसे पता है कि उसके प्रिय के इस रूप को काल उसके हाथ से छीन ले जायेगा और उसकी भीम-शक्ति बड़े-बड़ों की सारी शक्ति कुंठित और क्षीण कर देती है। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो काल-पाश का प्राप्य न हो जाये (दे० सॉनेट ६३-६५) साथ ही उसे वह भी विदित है कि मृत-गात्र मात्र ही कुटिल काल के पाश से विजित हो सकता है, पर आत्मा सुरक्षित रहेगी (७४)। अपनी लेखनी को वह काल से मोर्चा लेने के लिये प्रेरित करता हुआ कहता है कि—

'घृणा पात्र सर्वत्र बना दो काल के विजय केतु'

और इस प्रकार वह काल के दंड-पाश की गति रोक दे (१००)। वह काल को ललकार कर कहता है कि उसे उसकी जरठ-कपट कला प्रभावित नहीं कर सकती और वह सदैव सत्यनिष्ठ बना रहेगा। इस प्रकार कवि अपनी कला के द्वारा एक ऐसी अमर कृति की सृष्टि का दावा करता है, जो काल के प्रभाव से अक्षुण्ण रहेगी। इस अमरता की सिद्धि के लिये वह काल से संघर्ष करने को तैयार है और उससे नियमित युद्ध करने के लिये पूर्वेक्षण तक करता है। लीवर ने एक पृथक् अध्याय में इस 'अमरीकरण' के ऊपर विस्तृत प्रकाश डाला है।[1]

भाग्य

अनेक सॉनेट कवि की हतभाग्यपूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। उसका भाग्य उसे कुछ लोक प्रतिष्ठा नहीं दे सका है (२५); दुनिया की आँखों में दुर्गति पाकर वह एकांत में अपनी दुःस्थिति पर आँसू भी बहाता है (२९); उसे पता है कि वह भाग्य की कुटिल कोर के कारण नितान्त पंगु हो गया है (३७); और भाग्य ने उसके लिये साधारण उपबंध ही किये हैं (१११)।

प्रेम और वासना

शेक्सपियर का कथन है—

... प्यार नहीं कहला सकता वह प्यार,
जो परिवर्तन पाकर परिवर्तित हो जाता साथ,
या झुकता अपहृत होने को अपहारक के साथ,
अरे ! नहीं, सर्वथा अडिग वह एक बिन्दु की माप,
जो निहारता तूफानों को कभी न हिलता आप,

× × ×

१. एलिजाबेथन लव सॉनेट—जे० डवल्यू० लीवर, पृष्ठ २४६-२७२।

वह न काल-किंकर है, यदपि गुलाबी अधर कपोल,
कवलित होते उसके कुटिल पाश में पड़ अनमोल
प्यार न निजलघु-घड़ियों-हफ्तों में बदलता स्वरूप
बल्कि प्रलय के दिन तक अडिग रखा करता निज रूप।

(११६)

यह कवि का आदर्श प्रेम है। वह एक दुर्घटनामात्र से पैदा नहीं हो जाता और न उसमें हास-विलास प्रदर्शन भरे होते हैं, उसे नय से भीति नहीं, न वह गरमी से उगता है और न वर्षा में डूब जाता है (१२४)। वह प्रिय को लाभ पहुँचाने के लिये अपनी असंख्य हानियाँ करने को तत्पर है, उसके एक संकेत पर सब कुछ न्यौछावर कर सकता है (८८)। प्रिय जो चाहे करने के लिये स्वतंत्र है पर वह उसके सेवक की भाँति उसकी बाट जोहता रहेगा (५८)। उसे प्रिय का प्यार मात्र मिल जाना चाहिये और वह कृतकृत्य हो जायेगा—कुल, कौशल, शक्ति, सद्वस्त्र, सद्वाहन आदि अनेक ऐयिक आकर्षण उसके लिये श्रेष्ठतर ही हैं, जबकि उसे प्रिय का महाश्रेष्ठतम प्यार मिला हुआ है। प्यार विश्व की सभी समृद्धियों से ऊँचा है, उसे अपने इस प्रेम पर गर्व है। (९१)। वह 'वाणी' के समान प्रिय का ध्यान करता है और प्रिय उसके छन्दों में तान भरता हुआ उसके भारी अज्ञान को विद्या जितना ऊँचा उठा देता है; प्रिय ही उसका कला-सर्वस्व है (७८) वह विश्व की अनेक समृद्धियों से अपने को वंचित पाकर अपनी कदर्थना करता है कि उसे अपने प्यार की याद आ जाती है और तत्क्षण इस महान् संपत्ति के कारण वह अपने को सम्राटों से भी अधिक वैभवशाली समझने लगता है और उसे इस प्रेम को विश्व के सम्राटों के राजमुकुटों और वैभवों से भी बदलने में आपत्ति है (२९)। प्रिय की याद आते ही उसके सारे दुःखों का अन्त हो जाता है (३०)। उसका प्रिय सर्वगुण-संपन्न है और उसका है, तो फिर प्रिय का जो कुछ है, वह उसका अपना है और इससे उसके सारे दोष समाप्त हो जाते हैं (३६-३७)। किन्तु इसकी उलटी प्रक्रिया में कहीं उसका अपना कलंक प्रिय को न लग जाये इसलिये वह प्रिय से द्विधा विभक्त होने का प्रस्ताव करता है, जिससे कलंक तो उसके बाँट पड़ें और गुण प्रिय के। प्रिय के पास आने में वाहन की तीव्रतम चाल भी उसे अत्यन्त धीमी लगती है (५०-५१)। प्रिय से विरह में उसे वसन्त भी दारुण शीत ही लगता है और प्रकृति के अनेक आकर्षण उसे फीके लगते हैं (९८)। प्रिय के सौन्दर्य के आगे उषा और गुलाब व्यर्थ ही नहीं है, बल्कि उन्होंने जो भी सौन्दर्य पाया है, वह सब प्रिय से ही चुराया हुआ है (९९)।

दूसरी ओर वासना के बारे में कवि के विचार बड़े उग्र हैं—

है निर्लज्ज भाव से परम ओज का अपचय नाश
प्रकट वासना का चेष्टित, तब तक वासना-विलास
मिथ्याशप्त, विघातक, निन्द्य, रक्तमय, परिहरणीय,
दारुण, हिंस्र, कठोर घोर अति क्रूर अविश्वसनीय,
पा आनन्द तुरन्त घृणा का होता है संचार,
बिना वितर्क मार्गणा इसकी पा फिर झट अविचार
बिना वितर्क घृणा,.....

(१२६)

मात्रास्पर्शी ऐहिक भोग और दिव्य आध्यात्मिक प्रेम की परस्पर तुलना का एक सांकेतिक दृश्य सॉनेट १४६ में देखने को मिलता है। लीवर ने इस पर सिडनी का प्रभाव खोजा है।

६

सॉनेटों का सौन्दर्य

इस स्थल पर सॉनेटों का एक सर्वांगीण सौन्दर्य-विवेचन संभव नहीं है। शेक्सपियर को अपने सॉनेटों में भी वैसी ही सफलता प्राप्त हुई है जैसी अन्यत्र और वह अंग्रेज़ी में सर्वोत्तम सॉनेटकार माने जाते हैं। यद्यपि यह ठीक है कि कई ऐसे सॉनेट भी इस संग्रह में हैं, जिनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती; तथापि इतना स्पष्ट है कि उनका प्रणेता असामान्य और वैचित्र्यपूर्ण शक्ति वाला महाकवि था और वह स्वाभाविक सौन्दर्य का पुजारी था।[2] यह कहा जा चुका है कि महाकवि के शाब्दिक खिलवाड़ भी अपना एक निष्पादन-सौन्दर्य रखते हैं। माहूद का विचार है कि महाकवि इनसे असंपृक्त रहकर इनका विश्लेषण करते थे, फलतः इनमें वह वस्तुनिष्ठता आ जाती थी, जिसकी खोज हम सर्वोत्तम और सुन्दरतम नाटकीय कविता में करते हैं।[3] शेक्सपियर के सॉनेट एक कल्पनातीत मूल्य और महत्त्व वाला मानवीय प्रलेख (दस्तावेज) है और वह विश्व के एक महाकवि की भावुकता का इतिहास है। उनमें सामूहिक रूप में चित्रित प्रेम-संसार और रोमांस की तो बात ही अलग, अनेक सॉनेट एकाकी भी कविता के

---

१. तदेव, पृष्ठ १८१-१८२।

२. विलियम शेक्सपियर—जान मेसफील्ड, पृष्ठ १७।

३. शेक्सपियर्स वर्ड्प्ले—एम० एस० माहूद, पृष्ठ ११०।

सर्वोत्तम निदर्शन हैं। एक बार यदि पाठक को उनका रहस्य विदित हो जाये और उससे प्रत्येक अभिनेता की भूमिका ज्ञात हो जाये, तो पूरा नाटक उसकी आँखों के समक्ष स्वतः प्रदर्शित होने लगता है।[१] सॉनेटों को पढ़ते समय लगता है कि एक अलौकिक अतुलनीय महापुरुष का स्वर कानों में गूंज रहा है। यत्र-तत्र कृत्रिम शब्द कौतूहलों के होते हुए भी सर्वांगीण दृष्टि से उन्हें इस प्रकार की रचना में उचित ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया गया है।[२] वर्ड्सवर्थ का विचार है कि शेक्सपियर की रचनाओं में अन्यत्र कहीं भी उनकी अपनी भावनाओं का इतने उत्तम स्वरूप और मात्रा में इतना विशद चित्रण देखने को नहीं मिलता। कोई भी सामान्य ज्ञान वाला पाठक इस बात में सन्देह नहीं कर सकता कि सॉनेटों का उद्भव एक वास्तविक और वेदना मिश्रित अनुभव से हुआ है। उनमें पुनर्जागृति युगीन काव्य-परम्परा ने अंग्रेजी-परिपाक देखा है और वे एलिजाबेथ युगीन गीति-काव्य की धुरी हैं। व्यक्तिगत माध्यम से वे एक कलाकार के अनेकविध जीवन-प्रेम का साकार निरूपण है—वह समाज जिसमें कवि का प्रिय निर्मुकुट सम्राट् है और वह प्रकृति जहाँ वह सौन्दर्य-कमल के रूप में विकसित है। विश्व की कोई भी शक्ति भंगुर काल की गति और नश्वर मृत्यु की शक्ति को नहीं रोक सकती, किन्तु सॉनेट के कवि में वह शक्ति है, जो अपनी कला के बल पर काली स्याही में अपने प्रिय के रूप को चिर-सुन्दर और चिर-प्रदीप्त रख सकता है।[२]

कुछ आलोचकों का अन्यथा विचार भी है : हैजलिट का कथन है कि उनमें एक प्रमुख केन्द्रीय विचार खोजे नहीं मिलता और वह उन्हें बिलकुल समझ नहीं पाता और मार्क पेटीसन का विचार है कि थोड़े से ही सॉनेटों में महाकवि अपने माध्यम में सफलता प्राप्त कर सके हैं और उनमें परिपूर्णता आकस्मिक ही है। एक विद्वान् का विचार है कि पाठक को सॉनेट और सॉनेट ही कई-कई बार पढ़ने चाहिये और उनके बारे में उसे जो कुछ पहले से पता चल गया है, वह सब भुला देना चाहिये।[३] सॉनेट भावावेश के अनुपमेय और अद्वितीय निदर्शन हैं। जार्ज सेंटवरी का विचार है कि इनमें शेक्सपियर ने प्रेम का एक ऐसा पुट दिया है, जैसा पहले किसी कवि ने नहीं दिया और इस प्रकार सॉनेट अंग्रेजी साहित्य में उस ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं, जहाँ तक उसके बाद भी कोई

---

१. शेक्सपियर : पोर्ट्रेट रैस्टोर्ड—क्लेरा लौंगवर्थ डे शैम्बून, पृष्ठ १२२।

२. दि एलिजाबेथन लव सॉनेट—जे० डबल्यू० लीवर, पृष्ठ १८१,१८७-८८.

३. शेक्सपियर—आइवर ब्राउन, पृष्ठ २०६।

नहीं पहुँच सका। आइवर ब्राउन का विचार है कि सॉनेटों के सम्बंध में तर्क-वितर्क का तो कभी अंत न होगा, परन्तु उनके बारे में सेंट्सबरी का यह निर्णय अंतिम समझा जाना चाहिये। जिस संग्रह में संख्या १८, ८७, ९४, ९७, ९८, ११६ और १२९ हैं, वह सदैव अंग्रेजी साहित्य में मूर्धन्य स्थान प्राप्त करेगा।[1]

१०

यह अनुवाद

दुष्करता और सहायता

लीवर का विचार है कि इतने अदृष्टपूर्व वैचित्र्य, व्याप्ति और शक्ति वाले ये सॉनेट निस्सन्देह शेक्सपियर की अगाध प्रतिभा के प्रतीक हैं और उनके निर्वचन (अनुवाद) का दुःसाहस करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सागर में डुबकी लगाने का यह खतरा समझबूझ कर ही उठाना चाहिये।[2] इसके साथ ही जब एक अनुवाद पद्य में किया जाता है, तो छन्द की मात्रा, यति, लय और तुक के बन्धन इस कार्य को और भी दुष्कर बना देते हैं। कठिन स्थलों के निर्वचन के लिये अनेक कोषों के अतिरिक्त मैंने आर्डेन शेक्सपियर ग्रथमाला में प्रकाशित और सी० नौक्स पूलर द्वारा सम्पादित सॉनेट-संग्रह की टिप्पणियों तथा पेंगुइन माला में जी० बी० हैरिसन द्वारा सम्पादित संस्करण की टिप्पणियों की सहायता ली है। प्रूफ-स्थिति में आदरणीय बच्चन जी ने कई भूलों की ओर ध्यान आकर्षित किया और टी० जी० टकर द्वारा सम्पादित एक महत्त्वपूर्ण संस्करण मुझे निर्वचन की पुनः जाँच के लिये देने का कष्ट किया। उनके बहुमूल्य परामर्श और इस संग्रह की टिप्पणियों से लाभ उठाकर मैंने प्रूफ़-स्थिति में भी कई संशोधन किये। इसके लिये मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मेरे यह लिखने का अभिप्राय यही है कि अनेक भूलों का सुधार बच्चन जी के परामर्श के कारण हो गया, यह नही कि उन्होंने पूरे अनुवाद को देखा है। दूसरे शब्दों में जो सुधार हो गया, उसका श्रेय बच्चन जी को है और जो भूलें रह गई हैं, उनका उत्तरदायित्व मुझ पर है। मैं बच्चन जी के इस विचार से पूर्णतः सहमत हूँ कि ऐसे अनुवाद में सदैव सुधार और परिवर्तन संभव है और अगले संस्करण में (यदि उसका अवसर आया) अनेक पंक्तियों को नये निर्वचन के प्रकाश में पुनः परिमार्जित करना संभव हो सकेगा।

---

१. तदेव, पृष्ठ २१०-२११।

२. दि एलिजाबेथन लव सॉनेट—जे० डबल्यू० लीवर, पृष्ट २७४।

कठिनाइयाँ

चित्रकार द्वारा ही देखो उसकी कला अनूप,
खींचा उसने कहाँ तुम्हारी सच्ची छवि का रूप।

(२४—५, ६)

इसी दृष्टि से मैं पाठकों के निकट अपनी कुछ कठिनाइयों सफलताओं और असफलताओं का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन कर देना चाहता हूँ। निर्वचन और छन्द के बन्धन के अतिरिक्त कुछ अन्य विशिष्ट कठिनाइयाँ भी ऐसे अनुवाद में एक अनुवादक को उठानी पड़ती हैं। सॉनेट-परम्परा के प्रसंग में बताया जा चुका है कि सॉनेटकार शाब्दिक खिलवाड़ों की ओर भी विशेष ध्यान देता है। मैं नहीं समझता कि शब्दालंकारों का अनुवाद दूसरी भाषा में संभव है। ऐसी स्थिति में तो एक मूल अर्थ ही लिया जा सकता है। एक उदाहरण देखें—

प्रोफिटलेस यूज़रर, ह्वाई डस्ट दाउ यूज़

(४—७)

ओ निर्लाभ कुसीदक, करता क्यों उसका उपयोग

(अनुवाद)

× × ×

दैट यूज़ इज़ नौट फौरबिडेन यूज़री

(६—५)

यह वर्जित कौसीद्य नहीं है, है सुन्दर उपयोग

(अनुवाद)

इस यमक का निर्वाह अनुवाद में नहीं हो सकता। एक शाब्दिक खिलवाड़ और देखें, परन्तु इसका अनुवाद में भी सफल निर्वाह हो गया है—

दोज़ लिप्स दैट लव्स ओन हैंड डिड मेक,
ब्रेव्ड फोर्थ द साउंड दैट सैड 'आइ हेट,'

× × ×

'आई हेट' फ्रोम हेट अवे शी थ्यू
एंड सेव्ड माइ लाइफ, सेइंग 'नौट यू'।

(१४५—१, २, १३, १४)

वे मधु अधर रचा था जिन्हें प्यार ने स्वयं संवार,
'करूँ मैं घृणा' किये जा रहे इस ध्वनि का उद्गार.

× × ×

'करूँ मैं घृणा' में घृणा कह आगे विराम को छोड़
बचा दिया यह मेरा जीवन, आगे 'तुम्हें न' जोड़।
(अनुवाद)

इसी प्रकार अर्थ श्लेष का निर्वाह भी कई स्थलों पर सफलतापूर्वक किया गया है—

इफ ए ट्रू कांकर्ड आफ वेल टयून्ड साउंड्स
बाई यूनियन्स मेरीड डू औफेंड दाई इयर
× × ×
मार्क हाऊ वन स्ट्रिंग स्वीट हस्बैंड टु एनदर
स्ट्राइक्स ईच इन ईच बाई म्युचुअल आर्डरिंग
(८—५, ६, ९, १०)
× × ×
राग बद्ध ध्वनियों की सच्ची यदि एकता पुनीत,
भेद रही श्रुति कुहर तुम्हारे, मधुर मिलन-परिणीत,
× × ×
देखो कैसे एक तार बनता तन्त्री का कान्त,
सबको करता प्रहत परस्पर दे आदेश नितान्त,
(अनुवाद)

परन्तु शब्दश्लेष की दिशा में यह सफलता नहीं मिल सकती—

लव्स आई इज नौट सो ट्रू एज औलमैन्स नो
(१४८—८)
जग के 'न' से न सच्चे कहीं प्रेम-लोचन अनजान
(अनुवाद)

इसमें 'आई' के दो शब्दार्थों (लोचन, हाँ) का निर्वाह नहीं हो सका। इसी प्रकार—

बोर्न ओन दि बाइर विद ह्वाइट एंड ब्रिस्टली वियर्ड
(१२—८)
सित कठोर हो फिर अर्थी पर चढ़ जायें खलिहान
(अनुवाद)

इसमें भी दोनों शब्दार्थ लाने का प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं हो सका, यद्यपि दोनों अर्थों का संकेत स्पष्ट है। साथ ही विधिशास्त्र के प्राविधिक शब्दों (दे० ४६, ८७, १३४) अथवा पूर्वोल्लिखित दर्शन-शास्त्र के शब्दों का अनुवाद

भी एक समस्या लेकर सामने आता है, परन्तु उन्हें निभाने का पूरा प्रयत्न किया गया है।

सांस्कृतिक कठिनाइयाँ

शब्दालंकारों और प्राविधिक शब्दों के अनुवाद की कठिनाइयों से भी अधिक महत्त्व अनुवाद की सांस्कृतिक कठिनाइयों का है। पौराणिक कथाओं के पात्रों के उल्लेख तो परेशानी में डालते ही हैं (क्योंकि वैसे समानान्तर अपने पुराणों में मिलना सर्वत्र संभव नहीं), साथ ही ऋतु-चक्र, प्राकृतिक-उपादान तथा ऐसी ही अनेक बातों के अनुवाद में विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। 'समर' को वसन्त कह देना उचित नहीं, परन्तु उससे एक इंगलैंडवासी का जो अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि, भारत में 'ग्रीष्म' कहने से नहीं होती। इसी प्रकार चार तत्वों को और नौ वाणियों (म्यूज़ेज़) को यथारूप ले लेना, शस्य देवता 'सैटर्न' का अनुवाद केवल 'शस्य' का देना, काल के सिथे और नाइफ का अनुवाद दंड और पाश कर देना, रोज़ का अनुवाद कभी-कभी कमल कर देना, 'कैंकर' का अनुवाद 'करील' और 'एप्रिल' का अनुवाद 'मधु-ऋतु या वैशाख', फिलोमेल का अनुवाद 'कोकिल' कर देना—प्राकृतिक-चित्र-विधान की दृष्टि से मैंने सर्वथा उपयुक्त समझा है। कुछ पौराणिक नामों का एक विशेष कहानी से सम्बन्ध होने से विशेष महत्त्व होता है, जैसे हैलिन, अडोनिस आदि। इनको अनुवाद में भी यथारूप ले लिया गया है। 'फोनिक्स' एक ऐसा पुराण-कल्पित चिरजीवी पक्षी है, जो मृत्यु के समय जल जाता है और उसके रक्त से पुनः वैसे ही एक नये पक्षी की सृष्टि हो जाती है। एक भारतीय पाठक के लिये 'फोनिक्स' का अनुवाद 'जटायु' या 'गरुड़' आदि कर दिया जाए, तो कुछ स्पष्ट नहीं होता, अतः उसे भी न केवल यथावत् लिया गया है, बल्कि कुछ विशेषण बढ़ाकर मूल कथा की ओर भी संकेत कर दिया गया है—

एंड बर्न दि लौंग-लिव्ड फोनिक्स इन हर ब्लड,

(१९—४)

कर दे दग्ध चिरायु विहग फोनिक्स सजीव अछोर।

(अनुवाद)

इसी प्रकार 'डायनाज़ मेड' का अनुवाद डायना-कुमारी रखा गया है। क्यूपिड का अनुवाद काम अवश्य किया गया है, पर उसे 'काम-कलम' कहा गया है। भारत में बालों या धम्मिलों की तुलना शिखी-पिच्छ और नाग से और उनके वर्ण की तुलना घटाओं से की जाती है, पर पश्चिमी कवि उनकी

तुलना तारों और मार्जोरम-कलियों से करते हैं—इन्हें भी यथावत् रख लिया गया है। हिमकालीन पतझड़ भारत में नहीं होता, अतः पतझड़ को हिम-पतझड कह दिया गया है और एक स्थल पर 'अति-हिम-आवृत' कह कर उसकी तीव्रता की ओर संकेत कर दिया गया है।

संस्कृत कवियों से साम्य

एकाध स्थल पर मुझे शेक्सपियर की कई पंक्तियाँ ऐसी लगीं कि उनका संस्कृत पद्यानुवाद कर दिया जाये, तो कोई यह नही कह सकता कि वे किसी भारतीय सस्कृत कवि के उद्गार नही हैं। कालिदास का विचार है कि निसर्ग मधुर रूप के लिये प्रसाधन आवश्यक नहीं; बिलकुल यही शेक्सपियर का विचार है और शकुन्तला और टैम्पेस्ट की मिराडा की अनेक विद्वानों ने तुलना की है। सॉनेट १०१ ने यह बात और स्पष्ट कर दी—

ट्रूथ नीड्स नो कलर विद हिज़ कलर फिक्स्ड
× × ×
ब्यूटी नो पेंसिल..............................
× × ×
बीकोज़ ही नीड्स नो प्रेज़, विल्ट दाउ बी डम्ब
× × ×

इसे पढ़ते ही मुझे कालिदास की अमर पंक्तियाँ याद आ गई—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम्)

और सहसा अनजाने ही मेरे अनुवाद में मधुराकृति और मंडन शब्द पहुँच गये—

मधुराकृति मंडन चाहे न, बनेगी तो क्या मूक ?

इसी प्रकार सॉनेट ७० में सुषमा में एक कलंक चिह्न की उपस्थिति का वर्णन 'नैषधीयचरितम्' के चन्द्रोपालम्भ की याद दिला देता है। अनेक रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीक, अनन्योपमा आदि अलंकारों के प्रयोग भी संस्कृत कवियों की याद दिला देते हैं—

मेरी है प्रगल्भ लघु नौका, उससे तुच्छ अपार
तेरे विस्तृत छवि-निधि को स्वेच्छा से करती पार
(८०—७, ८)

× × ×

तव भुजपाशों हित निदरे मैंने कमलिनी मृणाल
मार्जोरम-कलियों ने हरे तुम्हारे केश-विशाल
हो भयत्रस्त गुलाबों ने कांटों में किया निकेत
लज्जा से है लाल एक दूसरा निराशा-श्वेत
(९९—६, ७, ८, ९)

× × ×

विद्रुम के आगे हैं उसके अधर लालिमा-हीन
(१३०—२)

× × ×

इस अनुपम वर्णन से अधिक कि तुम हो तुम से एक
(८४—२)

× × ×

इसी प्रकार यह विरह-वर्णन भी संस्कृत कवियों के विरह-वर्णन के समानान्तर ही है—

निठुर शीत सा कितना दारुण यह था विरह अपार

× × ×

पर तुम दूर कीर-पिक कलरव अरे मूक लाचार
(९७—१, १२)

तदपि न मोहक राग खगों के और न मधुर सुगन्ध

× × ×

मुझसे कहला सके न वे कुछ भी वसन्त के गीत

× × ×

हुआ न अचरज श्वेत-कमलिनी का विलोक शृंगार
गाया यश न गुलाब लालिमा का ही रूप निहार
(९८—५, ७, ९, १०)

हिन्दी में शेक्सपियर और सॉनेट छन्द

शेक्सपियर के कुछ नाटकों के हिन्दी अनुवाद द्विवेदी युग में भी हुए थे।

हमारे आदरणीय बच्चन जी ने भी मैकबेथ और ओथेलो के अत्यन्त सफल अनुवाद किये हैं। डॉ० रांगेय राघव ने भी कई नाटकों के अनुवाद किये हैं, परन्तु उनका लक्ष्य शायद मूल का कथानुवाद प्रस्तुत कर देना लगता है। साहित्य एकादमी ने भी शेक्सपियर के चार प्रमुख दुःखान्त नाटकों का अनुवाद कराने की व्यवस्था की है। हिन्दी में ब्रजमोहन तिवारी ने बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक के मध्य में सॉनेटों का एक संग्रह 'झलक' निकाला था, जिसमें पीट्रार्क और शेक्सपियर दोनों ही प्रकार के सॉनेटों के प्रयोग थे। गुलाब खंडेलवाल एम० ए० ने भी कुछ मौलिक सॉनेट लिखे है और कुछ अंग्रेजी सॉनेट अनदित किये है।[1] त्रिलोचन तथा अन्य कई प्रयोगवादी कवियों ने भी सॉनेट छन्द के कुछ प्रयोग किये है, पर सॉनेट-परम्परा ने हिन्दी में गहरी जड़ें अभी प्राप्त नही कर पाई है। अनवाद के सॉनेट इस दिशा में कोई नई परम्परा आरम्भ करते हों, ऐसी बात नही है, बल्कि अंत्यानुप्रास की दृष्टि से मैंने दो-दो निकटवर्ती पंक्तियों को तुकसम बनाते हुए, चौदह पंक्तियों को सात द्विपादों में बाँटा है, जो न पीट्रार्क की योजना है, न शेक्सपियर की, फिर भी चौदह पंक्तियों का एक मात्रिक छन्द तो अनायास प्रस्तुत हो ही गया है।

अपनी बात

मैंने महाकवि की एक पंक्ति का अनुवाद प्राय उन्हीं के शब्दों में एक ही पंक्ति में देने का प्रयत्न किया है। यह ठीक है कि छन्द के बन्धनों की पूर्ति के लिये कुछ भरती के पद भी लाने पड़े है अथवा मूल के कुछ भावों का विशदीकरण या संक्षेपीकरण भी करना पड़ा है। कविता का अनुवाद सदा से दुःसाध्य माना जाता रहा है और फिर पद्य का पद्य में शब्दशः अनुवाद तो असाध्य ही है। स्वभावतः यह अनुवाद भी शब्दशः नहीं है। प्रयत्न यही रहा है कि ऐसी स्थिति में मूल के भाव को कुछ विकसित या पल्लवित कर दिया जाये, जैसे 'फेयरेस्ट क्रीचर्स' के लिये 'सुन्दरता का शृंगार'; 'टाइम्स फूल' के लिये 'काल-किंकर' आदि और कभी-कभी—

मेकिंग ए फेमीन भियर अबंडेंस लाईज़
(१—७)
लहराते सागर में बूंदों का रच घोर अकाल
(आदि।)

हिन्दी में यति-प्रसार (एनजैम्बमेंट) जैसी कोई चीज नही रही, बल्कि संस्कृत में तो इसे एक अर्थ में 'यतिभंग' दोष ही कहा गया है। शेक्सपियर ने

सॉनेटों में यत्र-तत्र ही इसका प्रयोग किया है। मैंने भी उसे पंक्तिशः अनूदित करने का प्रयत्न किया है—

तुच्छ वस्तु तक सहेजता था रक्षित कर सायास
निज उपयोग हेतु. ....

(४८—२, ३)

मच्चे मनों के मिलन में मानूँ नगण्य संचार
बाधाओं का, ...

(११६—१, २)

पर उठ सुन तव नाम बताता कर तेरा निर्देश
तू उसकी जयमाला ... .

(१५१—९, १०)

जिस महाकवि की गर्वोक्ति हो—

है प्रत्येक शब्द बतलाता प्रायः मेरा नाम
मूल बता निज और जहाँ से आये वे अभिराम।

(७६—७, ८)

उस कवि का अनुवाद दुःसाहस नहीं तो और क्या है। फिर भी 'देवदूत सकुचाते वहाँ झपटते मूढ सगर्व' की ही भाँति यह दुसाहस मैंने किया है और मै समझता हूँ कि प्रत्येक विदेशी महाकवि के भावों का आस्वाद हिन्दी भाषियों को कराना हमारा कर्त्तव्य है। अब समय आ गया है कि शेक्सपियर की समूची ग्रन्थमाला का हिन्दी में विधिवत् अनुवाद हो। यह कार्य आरम्भ भी हो गया है और आशा है आगे चलकर सॉनेटों का भी मेरे से कहीं सुन्दर अनुवाद होगा, अस्तु—

जौं लौं फुलै न केतकी, तौं लौं विलस करील।

२१/८७ लोदी बस्ती,
नई दिल्ली।

—राजेन्द्र द्विवेदी

जन्माष्टमी, २०१५.

१

सुन्दरता के शृङ्गारों से वृद्धि हमें है इष्ट,
जिससे सुन्दरता का सरसिज न हो कभी भी नष्ट,
किन्तु काल जब चुन ले मुरझा, फूला कुसुम-कलाप,
बना रह सके अंकुर पीछे, वह स्मृति-वाहक आप,
पर तुम अपने ही ज्योतिर्मय नयनों में अनुरक्त,
अपनी आभा-ज्योति जगाते आत्म-स्नेह से सिक्त,
लहराते सागर में बूंदों का रच घोर-अकाल,
अपने ही रिपु आप मधुरिमा पर अपने अकृपालु।
आज विश्व की रूप-सुधा की नूतन-निधि तुम आप,
बिखरी पड़ती है मधुमय मधुऋतु सुन तव पद-चाप,
किन्तु समाहित निज कलिका में कर निज यौवन-भार,
युधा कृपण, तुम नष्ट कृपणता में करते हो प्यार।
दया विश्व पर, न तो सर्वग्रासी यह अरे दुरन्त
तव समाधि युत खा लेगा यह विश्व प्राप्य भी हन्त।

२

घेर चुकेंगे जब इस मुख को चालीसक हेमन्त,
मसृण-पटल पर खोचेंगे रेखाएँ गहन अनन्त,
तव यौवन-आवरण-गर्वमय आज दृगों का लक्ष्य,
चिथड़े सा अपहृतश्री होगा मूल्य विनष्ट अरक्ष्य;
सब पूछेंगे कहाँ गई वह रूप-माधुरी आज,
कहाँ गया माधुर्य-कोष वह तरुणाई का साज;
तब, गहरी डूबी आँखों में उसे बताना, हन्त!
होगी स्वतः ग्रास लज्जा व असंचय कीर्ति अनन्त।
कितनी अधिक कीर्ति का भाजन हो जाता वह रूप,
यदि तुम कह सकते—"यह मेरा शिशु, मेरा प्रतिरूप,
मेरी पूर्ति करेगा मेरी आयु आज है क्षम्य"—
उसमें उसका रूप—तुम्हारी भेंट—निखरता रम्य!
नूतन इसे बनाना होगा, जब तुम होगे वृद्ध,
शीतल जब तव-रक्त, रहेगा तब यह उष्ण समृद्ध।

३

अपना मुकुर मनोज्ञ उठा लो, देखो मुख रमणीय,
समय आ गया आज सृजे वह वैसा अन्य द्वितीय;
अब यदि अभिनव नहीं करोगे उसका जीर्णोद्धार,
तो यह जगती का वंचन, न अभागी कहीं उदार
रूपवती जननी है जिसका अफलित गर्भाधान
तेरी कृषि के कृषक-कर्म का करता हो अवमान ?
अथवा ऐसा कौन सजीला जन्मा है दुर्बोध
बन कर आत्म-प्रेम की कब्र, करेगा प्रजनन-रोध ?
तुम अपने जननी के दर्पण, वह तुममें ही आज
जोहा करती अपने यौवन-मधु-ऋतु साज-समाज :
वय-वातायन से वैसे ही देखोगे तुम आप,
भले झुर्रियाँ पड़ें, सुनहली वह अपनी छवि-छाप ।
पर स्मृति-शेष न रहने को यदि जीवित रहे, नितांत
एकाकी मर गये, मरेगी छवि यह साथ, दुखांत ।

४

संचयहीन सुभगते, करता व्यय क्यों व्यर्थ निदान
अपने ही ऊपर अपना छवि रूपी उत्तरदान ?
केवल ऋण ही देती, देती प्रकृति न कोई रिक्थ,
निर्व्यलीक वह देती उनको जो होते ऋजु-मुक्त ।
ओ कमनीय कृपण, फिर क्यों तू उसको रहा बिगाड़
देने को जो मिली भेंट शुचि, समझ रहा खिलवाड़ ?
ओ निर्लाभ कुसीदक, करता क्यों उसका उपयोग
जो है सबसे श्रेष्ठ मूलधन, न तदपि जीवन-योग ?
एकाकी अपने में सीमित कर निज कार्य-कलाप,
अपना ही वंचन करते हो, सुन्दर, अपने-आप ।
फिर जब प्रकृति कहेगी तुमसे करो महाप्रस्थान,
क्या अनुमत-लेखा छोड़ोगे पीछे रूपनिधान ?
लेगा साथ समाधि तुम्हारे वह अभुक्त सौन्दर्य,
होकर भुक्त, बना रहता साधक, निष्पादक, वर्य ।

५

वे घड़ियाँ गढ़ दिया जिन्होंने, कोमल कर से रम्य
यह प्रत्येक लोक-लोचन का उत्सव रूप सुरम्य,
उसके ही प्रति हो जाएँगी क्रमशः कुलिश कठोर,
उस असुभग के प्रति जो कभी कि सुन्दर रहा अछोर;
क्योंकि अनुपरत काल ग्रीष्म को देता बिलकुल मेट
लाकर दारुण शीत, रखे यदि उसको वहीं समेट;
शस्य तुषारावृत, हिम-पतझड़, दल-दल अन्तर्ध्यान,
अतिहिम-आवृत सुषमा हो, सर्वत्र शून्य सुनसान :
तब आतप निष्यन्द रूप सा रहे न नाम निशान,
बोतल में द्रव तरल सा भरा बन्दी रहे निदान,
तो सौन्दर्य निचोड़ नष्ट हो सुन्दरता के हाथ,
न वही रहे न उसकी स्मृति कुछ रहे किसी के साथ ।
किन्तु सुमन हिम ऋतु में यद्यपि होते क्षरित निदान,
रूप विसर्जित करते; जीवित रहता सार महान् ।

६

अतः न हिम के कुटिल-करों को करने दो अपरूप
अपना आतप-तेज, न जब तक भरो निचोड़ स्वरूपः
यह लावण्य किसी सुपात्र में; कोष एक कर प्राप्त
रख दो निज सुषमानिधि न कहीं हो सब स्वयं समाप्त ।
यह वर्जित कौसीद्य नहीं है, है सुन्दर उपयोग,
स्वेच्छा से ऋण लौटाने वालों का सुखमय-योग;
स्वयं तुम्हारे हित हितकारी सृजन आत्म-प्रतिरूप,
कहीं दसगुना सुखवर्द्धक है, दस हों एक सरूप;
बनो आज से कहीं दसगुने तो तुम सुखी अनूप,
यदि दस बार, दसगुने निज से सुभग रचो प्रतिरूप :
तो क्या मृत्यु करेगी यदि तुम ले लो विदा निदान,
छोड़ स्वयं को अपनी सन्तति में सजीव छविमान ?
बहो न आत्मेच्छा में तुम हो अतुलित रूप-निधान,
न हो काल से विजित, न कृमि ही हों तेरी सन्तान ।

७

अरुणाचल से उदित सुभग जब होता दिव्य प्रकाश
उठतीं दीप्त-रश्मियाँ प्रति-दृग नीचे से सोल्लास
झुक कर करता उस सद्योत्थित रवि को प्रणत-प्रणाम,
पुण्य प्रतापी नृप का दर्शनमय अर्चन अभिराम;
वह स्वर्गीय उदयगिरि पर चढ़ता धीरे उत्तान,
जीवन-दोपहरी में विकसित तरुण तुल्य बलवान्,
अब भी लौकिक नेत्र निहारा करते वह छविधाम,
उसके स्वर्णिम यात्रापथ के प्रहरी से अविराम;
पर जब उस अत्युच्च शिखर से स्यन्दन-हय विश्रान्त,
वृद्ध आयु सा डिगमिग होता दिनकर हन्त नितान्त,
तो वे सेवारत आँखे होती परिवर्तित और,
उसके उस नीचे पथ से खोजतीं अन्य कुछ ठौर:
वैसे ही तुम यौवन अपना गँवा रहे हो व्यर्थ,
यों अदृष्ट मर जाओगे, यदि सृजो न पुत्र समर्थ।

८

है संगीत श्रवण को, तुम क्यों सुनते, हो सन्तप्त ?
मधुर मधुर से नही झगड़ते, हर्ष हर्ष में तृप्त,
क्यों उससे है प्यार, न स्वागत जिसका करो सहर्ष ?
अथवा अपना क्लेश सहा करते क्यों सहित प्रहर्ष ?
रागबद्ध ध्वनियों की सच्ची यदि एकता पुनीत,
भेद रही श्रुति-कुहर तुम्हारे, मधुर-मिलन-परिणीत,
तो यह मधुर तुम्हारा तर्जन, तुमने रखे सहेज,
एकाकी वे गुण कर दें जो रम्य तुम्हारी सेज।
देखो कैसे एक तार बनता तन्त्री का कान्त,
सबको करता प्रहृत परस्पर दे आदेश नितान्त;
पिता, पुत्र औ' सुखी जननि का बन बिलकुल उपमान,
जो सब हिलमिल एक कि जिनका सुखद एक ही गान :
उनका वह निःशब्द गान, जो हैं अनेक पर एक,
कहता तुमसे 'कुछ न अकेले होगा, छोड़ो टेक'।

९

क्या विधवाश्रु वेदना की आशंका से भयभीत
एकाकी जीवन में करते हो सर्वस्व व्यतीत ?
निःसन्तति पड़ गया तुम्हें यदि मरना विधि के हाथ,
जग रोएगा तुमको जैसे पत्नी एक अनाथ,
फूट-फूट रोएगी विधवा दुनियाँ सतत विशेष
क्योंकि न अपनी अनुकृति कुछ तुम छोड़े जाते शेष,
जब कि सभी विधवाएँ रख सकतीं हैं अपने पास,
शिशु-नयनों में निज प्रियतम का रूप सहित उल्लास
देखो जग में असंचयी जो कुछ करता बरबाद,
स्थानांतर ही होता फिर भी पाती दुनियाँ स्वाद :
पर सुन्दरता की बरबादी का है अन्तिम अन्त,
यदि अभुक्त वह रहे, प्रयोक्ता का यह नाश अनन्त ।
उसके उर में अन्यों के प्रति रहता प्यार न, हाय !
जो अपने प्रति ऐसा घातक करता है अन्याय ।

१०

शर्म, करो इनकार कि करते नहीं किसी से प्रेम,
कौन तुम्हारे प्रति ऐसा है अदय कि साधे नेम ।
निश्चय है यदि चाहो तुमको करें सैकड़ों प्यार,
बिलकुल प्रकट कि दिया किसी पर प्रणय न तुमने बार;
क्योंकि भरे हो ठूंस-ठूंस तुम घातक घृणा निदान,
बिना हिचक कर सकते अपने प्रति षड्यन्त्र महान्
वह सौन्दर्य वितान तोड़ना ही तुमको अभिप्रेत,
जिसका पुनरुद्धार तुम्हें होना था पथ-संकेत ।
जिससे निज धारणा बदल लूँ——बदलो यह अविचार,
क्या अपनाना घृणा सुभगतर, पावन-प्रेम बिसार ?
बनो सदय औ' सानुकूल, जितनी है आकृति रम्य,
कम से कम निज हित बन जाओ सदय-हृदय आनम्य;
मेरा भाव विलोक रचो अपना सुन्दर प्रतिरूप,
जिए कि तुममें या तेरे में वह सौन्दर्य अनूप ।

११

जितने शीघ्र गिरे वय, उतने शीघ्र करो निर्माण,
निज यौवन-प्रतिकृति का, जिससे करना है प्रस्थान;
नए रक्त मज्जा का यौवन में अपना वह दान,
उसे कह सकोगे अपना जब यौवन करे प्रयाण।
इसमें भरी बुद्धिमत्ता, छवि और अनन्त विकास;
इसके बिना प्रमाद, बुढ़ापा अथवा निठुर-विनाश।
सब ऐसा सोचें, तो हो गति काल चक्र की बन्द,
और साठ वर्षे दुनियाँ को कर दें खत्म अमन्द।
जिनको रचा प्रकृति ने भंडारोचित नहीं विचार,
मर जाएँ सब कटु-कठोर वे रूपहीन निःसार :
जिसको उसने दिया श्रेष्ठतम अधिकाधिक उपहार;
तुम, वह दान सहेजो निरुपम देकर दान उदार;
तुम पर उसने छाप लगाई अपनी, था क्या अर्थ ?
यही, करो मुद्रित तुम आगे, वह प्रति जाय न व्यर्थ।

१२

जब मैं गिनता समय निरूपक घटिका का गति नाद,
सुभग देखता छिपते दिन को दारुण निशि की माँद;
और विलोका करता ऊषा का वह झड़ता बाग,
यौवन पीछे श्याम चिकुर पहनते रुपहला-राग;
ऊँचे देवदारु तरुओं को जब पाता निष्पत्र,
धूप बचाते थे कल तक जो बन वितान सर्वत्र,
और लहलही शस्य पहनकर वह आतप-परिधान,
सित कठोर हो फिर अर्थी पर चढ़ जायें खलिहान;
तो मुझको आ जाता सहसा रूप तुम्हारा याद,
प्रबल काल तुमको भी ले जाएगा कर बरबाद,
किन्तु मधुरिमाएँ औ' छवियाँ करतीं स्वयं बचाव,
मुरझा जातीं देख दूसरे को बढ़ते भर चाव;
काल-पाश से कोई भी पा सकता कभी न त्राण;
उसका यत्न विफल करने को करो सृष्टि-निर्माण।

१३

तुममें वह रहता निजत्व : पर, प्रिय, न रहेगा लेश
अरे, तुम्हारा तुममें, बस तुम होंगे यों ही शेष :
आने को है अन्त, रहो अब उसके लिए तयार,
किसी अन्य को दे दो अपना रूप अनूप अपार।
जिससे उस छवि का जिसको लाये बन पट्टीदार
अन्त न होने पाए : तब तुम निश्चय बड़े उदार
पा लोगे निजत्व फिर अपना होने पर अवसान,
होगा जब तव शिशु मोहक तव मधु-छवि से छविमान्।
कौन बनाता खँडहर ऐसे भव्य भवन को हाय !
जिसे प्रतिष्ठित रख स्वामित्व बचाएगा सोपाय,
प्रालेयी दुर्दिन के झंझावातों के प्रतिकूल,
और मृत्यु के चिर-हिम-नग्न निपातों के प्रतिकूल ?
असंचयी ही यह कार्य करेंगे, तुमको प्रिय यह ज्ञात
एक पिता था, अपने शिशु को कहने दो यह बात।

१४

नक्षत्रों से अपने निर्णय का न करूँ सन्धान;
फिर भी मुझको अन्तरिक्ष ज्योतिष का है कुछ ज्ञान,
पर अच्छे या बुरे भाग्य का करने को न विवेक,
महामारियाँ या अकाल या मौसम का उल्लेख :
न मैं भाग्य के सूक्ष्म विवरणों का कर सकूँ बखान,
उसके सब उल्का, वर्षा, तूफानों का अनुमान,
राजकुमारों का कह सकता न मैं समग्र भविष्य,
करके विपुल भविष्यवाणियाँ देख व्योम का दृश्य :
किन्तु तुम्हारे नयनों से अर्जित करता निज-ज्ञान,
(वे हैं ध्रुव नक्षत्र) उन्हीं में पढ़ता वह विज्ञान,
जिससे सत्य और सुन्दरता का हो साथ विकास,
निज से कुछ संचित करने का यदि तुम करो प्रयास,
है अन्यथा भविष्य-वाक्य मेरा तुमसे संबद्ध,
अन्त तुम्हारा सत्य और सुन्दरता का सहबद्ध।

१५

मैं विचारता जब बढ़ने वाला प्रत्येक पदार्थ
होता है परिपूर्ण कि बस छोटे क्षण भर के अर्थ,
प्रकट न करे विशाल सत्य यह कुछ, पर इतना स्पष्ट
गुप्त प्रभाव ग्रहों का ही करता उनको विस्पष्ट;
मैं निहारता पौधों सा ही होता मनुज-विकास,
उन्हें झिड़कता या दुलराता वही एक आकाश;
लहराते अपने यौवन मे, बढ़ कर फिर है ह्रास,
स्मृति के बल ही रहता उस सुन्दर युग का आभास,
तो इस स्थायी अस्थिति का यह मानस चित्र विधान
मुझे जताता तुम यौवन में अतुल धनी छविमान्,
जिसके हित कर रहा नाश के साथ कि काल विवाद,
तेरा यौवन-दिवस निशा में करने को बरबाद;
करूँ तुम्हारे प्रेम हेतु काल से घोर संघर्ष,
काल निकाले कुछ तुमसे मैं भरूँ नया उत्कर्ष।

१६

किन्तु नहीं क्यो तुम बनकर कुछ और अधिक दुर्धर्ष
उस रक्तारक्त कराल काल से करते हो संघर्ष ?
अपना अपनी-क्षय में परिरक्षण के साधन अन्य
जो मेरे रूखे छन्दों से कहीं अधिक हैं धन्य ?
आज शिखर पर सुखमय घड़ियों के तुम हो आसीन;
अभी अकर्षित अथवा अक्षत उपवन विपुल अदीन,
तेरे जीवित-सुमन सदिच्छा से धारेंगे, प्राण !
तेरे चित्रित रूप-लेख के जो हैं अधिक समान :
यों जीवन रेखाएँ कर दें, जीवन का उद्धार,
जो युग काल-तूलिका या मेरी लेखनी उदार,
न तो आन्तरिक मूल्यवती या न बाह्य से अनूप,
जन लोचन में कर सकती जागृत तेरा निज रूप।
अपने को दे देना तुमको रखता फिर भी शेष;
अपनी मधुर-कला में अंकित जीवित रहो विशेष।

१७

कौन करेगा मेरी कविता पर कल को विश्वास,
यदि उसमें हों भरे तुम्हारे अति असफल उल्लास ?
विदित विधाता को यद्यपि यह है बस एक समाधि
ढांके तव जीवन, कह सकती आधे भी न गुणादि।
मैं लावण्य तुम्हारे नयनों का कर सकता व्यक्त,
अभिनव छन्दों में करके तव सुषमा-राशि विभक्त,
तो आगामी युग कह देगा कवि कह रहा असत्य,
नहीं मर्त्य मुख पा सकते यह रूप अलौकिक सत्य,
अतः हमारे पृष्ठ जिन्हें कर देगा पीला काल
वृद्धों तुल्य तिरस्कृत होंगे सत्य-शून्य वाचाल,
तेरा सच्चा प्राप्य कहा जाएगा कुकवि-प्रलाप,
एक पुरातन जीर्ण-गीत का अतिरंजित-आलाप :
पर तव शिशु कोई जीवित यदि हो उस समय निदान,
तो तुम द्विधा जिओ, उसमें, मेरे गीतों में, प्राण !

१८

चुन लूँ तुलना हित क्या मैं वैशाख मास उपमान ?
तू तो कहीं अधिक मनमोहक है मितोष्ण छविमान् !
वैशाखी मृदु कलियों को झकझोरें झंझावात,
और हुआ करता मधुऋतु का अति लघु जीवन-प्रातः
कभी-कभी उद्दीप्त अधिक हो जाता दिव्य प्रकाश,
प्रायः उसका रूप सुनहला ढकती धुन्ध उदास :
कभी-कभी प्रति सुन्दर का सुन्दरता से विनिपात
होता अकस्मात् या व्युत्क्रम प्रकृति-प्रगति के साथ;
तेरा नहीं ढलेगा पर यह शाश्वत प्रखर-प्रताप,
न वह कहीं जाएगी छवि, जो तेरी अपनी आप;
मृत्यु न डींग भरेगी तू है उसके आज अधीन,
बना रहेगा अमर पंक्तियों में तू युग-युग पीन;
जब तक साँस ले रहा मानव, आँखें ज्योति निधान,
तब तक यह जीकर देगी तुझको जीवन का दान।

१९

ओ संहारक काल, कुन्द करमृगपति नख विकराल,
धरती से ही क्यों मरवाता उसके प्यारे लाल,
चुन ले उस दुर्दांत बाघ के दाँत नुकीले घोर,
कर दे दग्ध चिरायु विहग फोनिक्स सजीव अछोर;
चलते चलते रचता चल ऋतु कोमल और कराल,
चाहे जो कुछ कर ले जी भर अरे, क्षिप्र-गति काल,
जग के य, उसके झड़ते माधुर्यों के प्रतिकूल;
किन्तु रोकता तुझे एक करने से दारुण भूल :
मत रंगना मेरे प्रिय की भ्रू निज-गति से अपरूप,
जीर्ण लेखनी से मत अंकित करना कुछ विद्रूप;
अपनी गति से उसे अरंजित बिलकुल देना छोड़,
आगामी पीढ़ी हित छवि का गुणादर्श बेजोड़।
वृद्ध काल फिर भी कर ले, जो कुछ कर सके बिगाड़,
फिर भी चिरनव प्यार जिएगा मम छन्दों की आड़।

२०

सुमुख एक नारी का चित्रित प्रकृति करों से आप,
तू रखता मम भाव-स्वामिनी-स्वामी, युत-छवि-छाप;
हृदय एक नारी का मृदु अविदित जिसको जगवृत्त,
जो कुलटा नारी के फैशन जैसे द्रुत आवृत्त;
उनके दृग से ज्योतितर दृग, पर उनसे कम लोल,
स्वर्णिम उसे बनाते, जिसके ऊपर जाते डोल;
गठन पुरुष सी यंत्रिक करती जो सब रूप बनाव,
हरती पुरुष दृगों को, भरती ललना-उर में चाव।
नारी अर्थ तुम्हारा निश्चय हुआ प्रथम-निर्माण;
हुई प्रकृति रचते ही तुमको बेसुध रहा न ध्यान,
और जोड़ कुछ मुझे किया तुमसे वंचित लाचार,
कुछ अनुवृद्धि किन्तु मेरे हित जो बिलकुल बेकार।
ललनाओं के सुख हित तुमको उसने चुना, सुयोग,
मुझे प्यार दो निज, उनकी निधि हो उसका उपयोग।

२१

ता क्या उस संगीतकार जितना न मुझे आनन्द,
चित्रित छवि से जागृत हो बिखरे थे जिसके छन्द;
चुने अलंकारों हित स्वयं स्वर्ग उपमान अमाप,
जिसने उस शोभा की की सब शोभाओं से माप
उपमानों के गर्वीले जोड़े पर जोड़े ढूँढ
सूर्य-चाँद धरती-सागर के हीरे-मोती गूढ़,
मधु-ऋतु के नवजात सुमन औ' अन्य पदार्थ अलभ्य
जो स्वर्गीय पवन लहराती क्षितिज मध्य अति भव्य।
मैं सच्चा प्रेमी, मुझको लिखने दो सच्ची बात,
और करो विश्वास कि प्रिय मेरा उतना अवदात
किसी जननि का शिशु जितना, है यदपि न उतना दीप्त
जगमग जितने वे स्वर्णिम गगनांगण दीप प्रदीप्त;
कहें अधिक वे प्रिय जिनको लगते श्रुत-अनुश्रुत बोल;
मैं गाऊँगा यश न, बेचना नहीं बता अनमोल।

२२

मेरा दर्पण मुझे बता सकता है कैसे वृद्ध,
जब तक यौवन और तुम्हारी आयु बनी सहबद्ध;
किन्तु काल की रेखाएँ जब लूँगा तुममें देख,
तो चाहूँगा मृत्यु सुधारे मेरा जीवन-लेख।
क्योंकि तुम्हें ढाँके है, जो यह सब लावण्य निदान
बस सब मेरे हृदय का बना मृदु समुचित परिधान,
जो तेरे उर में बसता है जैसे यहाँ त्वदीय;
होगी तुझसे अधिक कहो तो कैसे आयु मदीय?
रहो प्रिय, अरे सावधान तुम उतने अपने आप,
निज हित नहीं तुम्हारे हित मैं हूँगा जिसके माप;
तेरा हृदय सदा रक्खूँगा उर में खूब संभाल,
रोगों से संभालती ज्यों मृदु धात्री अपना लाल।
अपना उर न खोजना मम उर के मरने के बाद;
मुझे दिया था, कभी न लौटाने को, रखना याद।

२३

रगमंच पर अनभ्यस्त अभिनेता हो भय-त्रस्त,
जैसे अपनी भूल भूमिका जाता अस्त-व्यस्त,
होती विभीषिका आवेश भरी कुछ भीषण बात,
दुर्बल उसका हृदय बनाता जिसका प्रखर-निपात;
मैं त्यों जाता भूल कहीं विश्वास न होए चूर्ण
वर्णन प्रेम-विधान प्रेम-संस्कार कथा का पूर्ण,
और स्वप्रेम शक्ति अपने में होती क्षरित प्रतीत,
भाराक्रान्त प्रेम अपने ही के बल से अतिनीत।
मेरी दृष्टि बने फिर पा भाषण-चातुर्य अचूक,
मेरी हृत्तल की वाणी की वाहक वक्ता मूक;
करे प्रेम का वर्णन जो औ' चाहे प्रत्यादान
उस वाणी से अधिक, जो रखे व करे अधिक बखान।
अरे, सीख ले मूक प्रेम के लिखे हुए वे गीत :
दृग से श्रवण, प्रेम का है यह वाग् विलास पुनीत।

२४

चित्रकार बन मेरे दृग चित्रित कर चुके अनूप
मेरे हृदय पटल पर तेरा अतिशय सुन्दर रूप;
मेरी देह चौखटा वह जिसमें है जड़ा नितांत,
उचित दशा में चित्रकार की सुन्दरतम कृति कांत।
चित्रकार द्वारा ही देखो उसकी कला अनूप,
खींचा उसने कहाँ तुम्हारी सच्ची छवि का रूप,
जो मेरे उर-पुण्यस्थल में रही आज भी भूल,
उसके सुभग गवाक्ष बने हैं तेरे दृग अनुकूल।
अरे, दृगों ने रचा दृगों के हित क्या विशद-विधान :
मम दृग ने अंकित की तव-छवि, तव दृग हैं उपमान
मेरे उर-वातायन के, जिनसे छन सूर्य-प्रकाश
समुद झाँकता वहाँ देखने तेरा रूप-विलास;
पर दृग पुष्ट कला निज करते रखें न यह चातुर्य,
खींचें वही निहारें जो, जाने न हृदय-प्राचुर्य।

२५

वे जिन पर रहते ग्रह उनके बने सदा अनुकूल,
लोक-प्रतिष्ठा, उच्च पदों के गुण गाएँ सब भूल,
पर मैं जिसे न ऐसे आदर दे पाया कुछ भाग्य,
मग्न अप्रत्याशित सुख में मानता परम-सौभाग्य।
महानृपों के रत्न सकें उतनी ही प्रभा बिखेर
जितनी सूर्यमुखी रवि की छवि को पल-पल पर हेर;
उसका वह अभिमान रवि-रहित होता अन्तर्लीन,
भ्रुकुटि-विलास मात्र पर यश सब होता तुरत विलीन।
वह दुर्दान्त वीर, विक्रम जिसका रण में विख्यात,
जीत सहस्रों युद्ध एक दिन चूक गया यदि घात,
तो सारी मिट्टी में मिलती उसकी कीर्ति अपार,
सभी भूलते उसका पिछला श्रम वह अपरम्पार:
तब तो मैं ही सुखी कि करता प्यार मिले प्रति-प्यार
जिसे डिगा सकता न स्वयं डिग सकता, हो निरधार।

२६

मेरे प्रेमाधिपति कि जिससे मैं सेवक सा बद्ध
तेरे गुण ने मेरे कर्त्तव्यों को किया सुबद्ध,
तेरे पास भेजता हूँ मैं यही लिखित सन्देश,
निष्ठा देखो, मत देखो मम वाग्विलास विशेष।
यह कर्त्तव्य वृहत्तर मेरी निर्धन वाक् अतीव
शब्दों के अभाव में इसको कर देगी निर्जीव;
पर आशा है मुझे तुम्हारा कुछ सुन्दर सुविचार,
तव अन्तर्मन तक अनलंकृत कर देगा संचार।
तब तक कोई ग्रह करता जो गति से पथ-निर्देश,
सानुकम्प मुझको बतलाएगा दे शुभ सन्देश,
मेरे जर्जर रूप प्रेम को देकर नव-परिधान,
पात्र तुम्हारे मधुर-समादर का रच मुझे महान्।
तभी सकूंगा बता कि कितना तुमको करता प्यार,
तब तक वहाँ न रहूँगा, जहाँ मुझको सको विचार।

२७

दिन के श्रम से थका शीघ्र जाता शय्या की गोद,
यात्रा-श्रमित शिथिल अंगों का प्रिय विश्राम-विनोद;
तब मेरे मन में होता नव-यात्रा का आरम्भ.
देह कार्य की इतिश्री पर मन-कार्यों का प्रारम्भ :
तब मेरे विचार (होता मैं जहाँ दूर आसीन)
तुम तक उत्सुक यात्रा करने में होते तल्लीन,
मेरी क्लान्त शिथिल पलकों को बना पूर्ण अनिमेष,
अन्धकार दिखला, जैसा अन्धे देखें सविशेष :
बस प्रस्तुत करता मेरा मन एक काल्पनिक चित्र
मेरे दृष्टिहीन दृक्पथ में तव-छाया सुविचित्र,
करती जो विकराल निशा में अंकित मणि-अनुरूप,
कृष्ण रात्रि को जगमग, नूतन उसका जरती रूप।
ऐसे व्यस्त देह दिन को औ' निशि को मन अविराम,
तेरे हित मेरे हैं पाते वे न तनिक विश्राम।

२८

फिर कैसे हो पाए मेरी गति सुखमय सानन्द,
जिसके हित विश्रान्ति-लाभ का द्वार पड़ा हो बन्द ?
जब दिन की पीड़ा न रात कुछ भी कर पाती दूर,
उलटे दिन से रात—रात से दिन पीड़ित भरपूर,
यद्यपि एक दूसरे के शासन के घोर अमित्र,
दोनों मेरे उत्पीड़न को बनते सच्चे मित्र,
एक थकाता, अन्य शिकायत करवाती भरपूर
कितना भी श्रम करूँ सदा मैं रहता तुमसे दूर।
दिन से खुश करने को कहता, तुम हो कितने शुभ्र,
तू करता छवियुक्त घेरते जब नभ को आ अभ्र.
ऐसे ही मैं श्याम निशा की करता चाटु अनेक;
विकचित उडुगण भले न, पर सन्ध्या स्वर्णिम अभिषेक।
पर करता दिन अनुदिन मेरे दुःखों की परिवृद्धि,
प्रतिनिशि निशा बढ़ाती अतुलित मम वेदना-समृद्धि।

२९

दुनियाँ की आँखों में दुर्गति पा जब भाग्य-विहीन,
मैं एकाकी अपनी दु.स्थिति पर रोता हो दीन,
दुखी बना निज विफल-रुदन से, व्यर्थ वधिर हत-दैव,
अपनी ओर निहार कोसता मैं अपना दुर्दैव,
चाहूँ, आशा करूँ, बनूँ मैं किसी धनी के रूप,
वैसा बनूँ, मुझे भी वैसे घेरें मित्र अनूप,
इस सा कौशल मिले और उस जन सा प्रतिभा-भाग्य,
मिला हुआ जो उससे तनिक न तुष्ट समझ सौभाग्य;
इन्हीं विचारों में कदर्थना निज करता चुपचाप,
सहसा आता ध्यान तुम्हारा--मेरी उर-स्थिति आप
(उस लावक सी होती जो ऊषा में तड़के जाग
खोई भू से उठ) अलापती दैव-कीर्ति के राग;
मधुर-प्रेम तव होते ही स्मृत लाता वह सम्पत्ति,
सम्राटों से जिसे बदलने में मुझको आपत्ति।

३०

जब मैं मधुर मौन घड़ियों में होता भाव-निमग्न
करता याद अतीत और वे बातें—सपने भग्न,
भर आता उर नहीं मिले वे मुझे अनेक अभीष्ट,
पिछले कष्टों पर नव-दुख प्रिय किये समय ने नष्ट,
तब भर आते वे दृग जिनमें होता न था प्रवाह,
जाते जब अमूल्य प्रिय-जन थे चिर निद्रा की राह,
फिर से गाता युग से भूला स्वजन-विरह का राग
और अनेक लुप्त दृश्यों पर जाता नव-दुख जाग।
तब हो सकता दु:खित उन पर जो दुख हुए अतीत,
हो शोकातुर अब गा सकता करुण वेदना-गीत
करुण कथा उनकी जिनका हो चुका करुण-अवसान,
फिर से उसे चुकाता जैसे किया न हो भुगतान।
पर जिस क्षण आता मुझको प्रिय अरे! तुम्हारा ध्यान,
हानि पूर्ति होती, सब दु:खों का होता अवसान।

३१

तव उर में उन सब हृदयों का भरा अपरिमित प्यार,
जिन्हें छोड़कर समझ रखा था मैंने मृत निरधार;
वहाँ प्रेम का राज्य, प्रेम के वे सब प्यारे अंग,
वे सब मित्र जिन्हें समझा था मैंने मृत गतसंग।
दाह-दग्ध कितने ही मेरे अश्रु-विन्दु सुपुनीत
प्यार धर्म का, बना चुका मम नयनों से अपनीत,
व्याज तुल्य मृत प्रिय-जन का अब वह सब प्रकट निदान
हृत पदार्थ सा, पड़ा तुम्हीं में गुप्त निधान समान!
वह समाधि तुम, जिसमें गढ़ कर भी जीवित वह प्यार,
जिसमें बंधे हुए मम मृत स्वजनों के जय-उपहार,
दिया जिन्होंने तुमको मेरा निज-निज अधिकृत भाग;
जो अनेक कारण एकाकी अब तेरा बड़भाग:
तुममें होते मुझे दृष्टिगत उनके वे प्रिय रूप,
तुममें (उन सबका) है वह मेरा सर्वस्व अनूप।

३२

यदि तुम उस दिन जिओ मुझे जब पूरा तुष्टि-प्रसंग,
वृषली मृत्यु ढके मिट्टी से जब मेरे प्रत्यंग,
और भाग्य से पुनः पढ़ सको ये पंक्तियाँ मदीय
दीन अकिंचन निज प्रेमी की जो अब है स्वर्गीय
काल चक्र सुषमा से उनकी तुलना करना भ्रान्त;
वे हो जाएँ भले सभी लेखनियों से अतिक्रान्त,
रखना उन्हें प्यार मेरे, मत उनकी लय के अर्थ,
जो कि हृष्टतर मनुजों के भावों से उच्च, समर्थ।
मुझको बस देना कृपया यह प्रेम भरा सुविचार;
मम सुमित्र की वाणी होती वय सह वृद्धाकार,
तो इस प्रेम जन्य से करती सुभग प्रसव कुछ नव्य,
जो सुन्दरतम सज्जावालों के सम होता भव्य:
चला चूँकि वह गया, भले अब कवि हों अधिक समर्थ,
इनके शैली हेतु पढ़ूँगा, उसके बस प्रेमार्थ।

३३

देखे कितने सुभग सबेरे करते चाटु अनेक,
गिरि-शृङ्गों की, निज ऊँची आँखों से कर अभिषेक,
और चूमते हैम-होंठ से हरे-भरे मैदान,
दिव्य-रसायन से रचते स्रोतों को स्वर्ण-समान;
घिर आतीं फिर घृणित घटाएँ भीषणतम दुर्दान्त
छा जातीं रवि के स्वर्गिक मुख पर हर ओर नितान्त,
और सुदूर जगत से रवि का आनन देती ढाँप,
वह यों दुर्गति सह छिप जाता पश्चिम में चुपचाप :
यों ही एक सबेरे मेरा सूर्य हुआ था दीप्त,
मुझको बना ज्योति, सुषमा, भास्वरता से उद्दीप्त;
रहा घड़ी भर ही पर वह हा हन्त ! हमारे पास,
भुवनमेघ ने उसे आज आवृत कर लिया, हताश !
मेरा प्यार न करता उसको अतः अवज्ञा हास;
लौकिक सूर्य छिपेंगे ही, जब छिपता दिव्य-प्रकाश ।

३४

वचन दिया था क्यों तुमने होगा अब सुदिन सुकाल,
खींचा कंचुक-रहित मुझे क्यों यात्रा-हित तत्काल ?
घृणित घटाओं ने पथ ही में लिया मुझे लो घेर,
अपने अंधड़ में डाली तेरी सुभगता बिखेर,
यह पर्याप्त न तुम हो जाओ मेघों से उन्मुक्त,
चमका देने को यह मेरा मुख वर्षा संपृक्त
कोई नहीं बताएगा वह सुन्दर है अनुलेप,
घाव भरे जो, रोक न ले पर दुर्गति-पादक्षेप:
तव-लज्जा भी दूर न कर सकती मेरा परिताप;
घाटा रहा मुझे, तुम कर लो कितना पश्चात्ताप :
उत्पीड़क का दुख, देता बस थोड़ा सा आराम,
उसको जो भुगतता कठिनतर उत्पीड़न-परिणाम,
किन्तु बहाता तेरा प्रिय मोती से अश्रु अपार,
वे बहुमूल्य चुकाते सब दुष्कृतियों का निस्तार ।

३५

जो कुछ किया न उस पर तुम अब बनो दुखी साशंक :
काँटे हैं गुलाब में रजतोपम निर्झर में पंक;
बादल और ग्रहण करते शशि रवि को भी आच्छन्न,
मधुमय कलिका में भी कुत्सित कीड़ा रहे निषण्ण।
करते हैं त्रुटि मानव सारे, मैं भी यहाँ निदान,
उचित बताने हित प्रवेश तव ढूंढ़ रहा उपमान,
स्वयं गिरा अनुशोध तुम्हारी त्रुटि का करूँ अपार,
तव कृत्यों से बड़े बहाने खोज रहा अनुदार :
थे अपराध तुम्हारे कामुक, मैं तो न था अजान,
(तेरा प्रतिपक्षी ही तेरा बना वकील निदान)
मेरे ही विपक्ष में करता वैध-युक्ति उपबद्ध :
मेरे प्रेम-घृणा में ऐसा छिड़ा हुआ गृह-युद्ध,
मुझको आवश्यक हो जाता बनना एक सहाय,
मधुर चोर का, कुटिल लूटता जो मुझको निरुपाय।

३६

कह लेने दो मुझे, उभय अब हम हों द्विधा विभक्त,
हैं अविभाजित प्रेम हमारे यद्यपि एक सशक्त :
जिससे वे कलंक जो मुझमें बने रह गए शेष,
बिना तुम्हारे मैं एकाकी सहूँ उन्हें निःशेष।
रही प्यार में हम दोनों के यही एक है बात,
यद्यपि उभय जीवनों में पार्थक्य करे दुर्घात
मिटा न पाती यदपि प्रेम का वह एकत्व प्रभाव,
तदपि प्रेम सुख की मधु-घड़ियों को हरती पा दाँव।
मैं कह पाऊँगा न सदा ही तुमको अपना अंग,
कहीं बने मम ताप तुम्हारी लज्जा का न प्रसंग;
प्रकट कृपायुत न तुम मुझे दे सकते गौरव हन्त,
जब तक अपने नाम से न कर देते उसका अन्त :
पर, न करो यह, मैं करता तुमको वह प्यार महान्,
तुम मेरे तो सब मेरा, जो तुम्हें मिले गुण-गान।

३७

जैसे एक प्रवृद्ध पिता पाता है अतुलित मोद
चंचल सुत को करते देख नए तारुण्य-विनोद,
वैसे बना भाग्य की कुटिल-कोर से पंगु निदान,
तेरी गुण-गरिमा में पाता हूँ सामर्थ्य महान्;
सुन्दरता, कुल या विदग्धता या सम्पत्ति अपार,
इनमें से कोई, या सब, या और अधिक उपहार,
बने प्रतिष्ठित स्वाभाविक तुममें सब भरे अपार,
इसी कोष में है संसक्त किया मैंने निज प्यार :
अतः न मैं हूँ निर्धन, पंगु न तनिक घृणा का पात्र,
जब तक देता ऐसे निरुपम दान कनक सा गात्र,
मैं, तेरा भंडार सदा जिसके हित है पर्याप्त,
तेरे यश-कण पर जी सकता, मानो सब कुछ प्राप्त;
जो भी सर्वश्रेष्ठ हो, तुम सबसे होओ सम्पन्न;
यह मेरी आकाङ्क्षा, तब मैं दसगुण बनूँ प्रसन्न।

३८

मेरी वाणी को होगा क्यों तब तक विषय अभाव,
जब तक तुम जीवित, भरते मेरे छन्दों में भाव
अपने मधुमय भाव, अलौकिक अतिशय दुर्लभ भाव
जिनका प्रति लघु लेखक करना चाहेगा अपनाव !
दो अपने को धन्यवाद, यदि मुझमें हो कुछ बात
दर्शनीय, उपयुक्त तुम्हारे जिस पर दृष्टि-निपात;
ऐसा कौन मूक, लिख सकता नहीं तुम्हारे अर्थ,
जब तुम स्वयं दे रहे आविष्कारक ज्योति समर्थ !
दसवीं वाणी बनो, दसगुने अधिक मूल्य की खान,
उन पिछली नौ से, जिनका कविगण करते आह्वान;
तुम्हें बुलाए जो, उसके हों निर्मल छन्द पुनीत,
युगों-युगों तक जीवित रहने वाले शाश्वत-गीत।
यह लघु वाणी दे यदि इन उत्सुक घड़ियों में हर्ष,
तो श्रम मेरा, किन्तु तुम्हारा हो वह यश-उत्कर्ष।

३९

मैं कैसे सुजनता सहित तव-गुण कर सकूँ बखान,
जब तुम मेरे ही सुन्दरतर अंग अधिक छविमान !
अपना ही गुणगान मुझे क्या दे सकता प्रतिदान !
जब गाता तेरे गुण तो यह मेरा ही यशगान;
अच्छा तो हम रहें विभाजित बस इसके ही हेतु,
औ' प्रिय प्यार हमारा त्यागे एक नाम-संकेत,
द्वारा इस पार्थक्य के तुम्हें ही दूँ केवल मात्र,
जो है प्राप्य तुम्हारा, जिसके तुम एकाकी पात्र।
विरह, सिद्ध होता कितना उत्पीड़क तू दुर्दान्त,
यदि तेरा कटु-विरह न देता अवसर मधुर नितान्त
समय बिताने को कर-कर के प्रिय की मधुरिम-याद,
(छलती है जो समय और स्मृति को मधुमय अविवाद,)
तू सिखलाता एक अंग में करना दो की माप,
कर उसका यश-गान कि जो है दूर यहाँ से आप !

४०

सुभग, ग्रहण कर लो तुम सब मेरे सारे ही प्यार,
पहले से हो गया अधिक क्या बोलो अब अधिकार ?
प्रिय, न तनिक वह प्यार शेष, तुम कहो जिसे सच प्यार;
पूर्व अधिक पाने से, सब पर था तेरा अधिकार।
मेरे प्यार से मिले तुमको यदि फिर मेरा प्यार,
दोष न दूँगा तुम किया क्यों वह प्रयुक्त उपहार;
किन्तु, करोगे आत्मप्रवंचन, होगा दोष अपार
स्वयं स्वाद ले उसका, जिसको करते अस्वीकार।
करता क्षमा दस्युता तेरी ओ अति कोमल चोर,
यद्यपि तू हरता सब मेरी निर्धनता बरजोर;
प्रेम जानता, कहीं अधिक दुस्तर सहना वह ताप
विकट प्रेम-त्रुटि-सहन, घृणा की सुविदित क्षति से आप।
चपल सुभग, तुझमें अवगुण पाते हैं गुण का चित्र
मारो मुझे घृणा से, पर हम होंगे नहीं अमित्र।

४१

वे मोहक च्युतियाँ स्वातन्त्र्य जिन्हें करता भरपूर
जब मैं कभी तुम्हारे उर से होता क्षण भर दूर,
तेरी आयु और सुन्दरता के यह है उपयुक्त,
अब भी जहाँ रहे तू लालच रहता है अनुपक्त।
तू है भला अतः तुझको जीतना सभी का ध्येय,
तू है सुन्दर अतः सभी का है मनवांछित जेय,
और चाहती नारी जब, तो किस नारी का लाल
उसे छोड़ भागेगा जब तक सफल न उसकी चाल ?
खेद मुझे पर फिर भी तू मम प्राप्य सकेगा त्याग
भिड़केगा तू अपने चंचल यौवन छवि-अनुराग
जो ले गए वहाँ पर तुझको निज पचड़े में डाल
जहाँ खोलना पड़ा सत्य का तुझको दुहरा जाल;
उसका, तुझमें उसे रूप तव ने ललचाया अज्ञ,
तेरा, तेरी छवि न रही मेरे प्रति क्योंकि कृतज्ञ।

४२

तूने उसे पा लिया मेरा यही नहीं सब ताप,
अब भी कहा जायगा, मैं करता था प्यार अमाप,
उसने तुझे पा लिया, मेरा यही दुःख गम्भीर,
एक प्यार का घाटा यह करता है बहुत अधीर।
प्रेमी अपराधियो ! क्षमा कर दूँगा यह निरधारः—
उसे प्यार करता तू क्योंकि विदित मै करता प्यार;
औ' अपने हित यद्यपि वह करता इतना अतिचार,
मैं स्वमित्र को करने दूँगा, निज हित उसको प्यार।
तुम बिछुड़ोगे मुझसे, मेरी हानि प्रेम का लाभ,
और, उसे खो, मिली मित्र मम को वह हानि, अलाभ,
मिले उभय दोनों को, मैंने खोए दोनों हृत,
दोनों मेरे हित मुझको देते यह दोष दुरन्त :
किन्तु हर्ष यह, मित्र और मैं एक न है कुछ भेद;
आत्मप्रशंसा ! वह मुझको ही करता प्यार अखेद।

४३

रहते पलक बन्द, तब मम दृग लखते दृश्य महान्,
क्योंकि देखते दिन भर सारे दृश्य न दे कुछ ध्यान;
पर सोने पर सपनों में तुम आते भर उल्लास,
दिन में धूमिल दृष्टि, तमस में दिपता रूप-विलास;,
तेरी छाया तो तम-छाया को करती उद्दीप्त,
तव छाया का रूप करेगा तो कैसी छवि दीप्त
जगमग-जगमग दिन में पा दीपित तव ज्योति अपार,
मुंदे दृगों के हित तब-छाया-द्युति जब अपरम्पार !
तो (मैं कहता) मेरे दृग होंगे कितने बड़भाग
तुझे निहार चमचमाते दिन में, रह अपलक, जाग,
उस नीरव-निशीथ में जब तव-छाया सुभग अपूर्ण
ठहरा करती नयनों में जो मुदे नींद-आघूर्ण ?
जब तक तुम्हें न देखूँ दिन भी है राका के रूप,
निशा रजत दिन जब सपने दिखलाएँ तुझे अनूप ।

४४

सार-तत्व मम मांस का अहो ! होता कहीं विचार,
घातक-दूरी रोक न पाती तो मेरा पदचार;
खिचा चला आता दूरी कितनी भी क्यों होती न,
मैं सुदूर देशों से वहीं जहाँ तुम हो आसीन ।
कोई बात नही यद्यपि पग खड़े यहाँ हैं दूर,
इस धरती पर जो है तुमसे दूर विपुल भरपूर,
क्षिप्रग क्योंकि विचार भूमि सागर सकता कर पार,
जैसे ही हो ज्ञात कहाँ जाना है उसे सिधार ।
तव विचार ले रहा प्राण पर, मैं हूँ हा ! न विचार ।
लाँघ सकूँ, मीलों की दूरी या तब विरह अपार,
पर इतने पृथिवी पानी ने मम गति रक्खी रोक,
मुझे बिताना होगा समय साथ रख अपना शोक;
मिला मन्दगति तत्वों से कुछ नहीं चित्त-विश्राम
अश्रुधार बस, दोनों के दुख का कातर परिणाम ।

४५

तत्व शेष दो रहते, हलकी वायु, सुपावन आग,
रहूँ कहीं मैं, दोनों जाते पास तुम्हारे भाग;
पहला है मेरा विचार, दूसरा कामना-कोष,
दोनों आते जाते जल्दी, वेग और ले जोश।
दोनों क्षिप्रग तत्व चले जाते जब ये परदेश
तेरे पास मनोरम मेरा लिए प्रेम-सन्देश,
शेष रहे दो, बनी चार तत्वों से मेरी देह
होकर तब वेदना-व्यथित जाने लगती यमगेह;
जब तक जीवन-तत्वों का होता न पुनः संचार
उन दूतों के, तुमसे यहाँ, लौट आने पर, प्यार !
वे आ-आ वापस, कर निश्चित, सुभग स्वास्थ्य वृत्तान्त
तेरा मुझसे आकर कहते विमल सविवरण कांत :
सुन मैं होता सुखी, पर न चिर रहता यह उल्लास,
मैं फिर देता भेज उन्हें, फिर होता विरह-उदास।

४६

मेरे नेत्र और उर में है छिड़ा घोर-संघर्ष,
कैसे बाँटे तेरी रूपसुधा का जय-उत्कर्ष;
मेरे नयन रोकते उर तक तव-छवि साक्षात्कार,
हृदय रोकता मम नयनों का यह स्वतन्त्र अधिकार।
मेरा हृदय कह रहा तुम हो वहाँ सहज आसीन,
(वह सुकक्ष जो दीप्त दृगों से होता दृष्ट कभी न),
पर प्रतिवादी इस दलील को करता अस्वीकार,
कहता है उसमें तेरी छवि है सुस्थित अविकार।
बैठा जूरी-मंडल निर्णय करने को सोल्लास
एक विचार-जांच के हित, सब उर-उपजीवी दास;
उनके निर्णय से निश्चित हो गये समूचे भाग
स्पष्ट दृगों का अर्द्ध भाग, प्रिय उर का भी अधभाग :
निर्णय था यों : प्राप्य दृगों का है तेरा बाह्यांश,
उर का प्राप्य तुम्हारे उर का प्रेम भीतरी अंश।

४७

मेरे हृदय और दृग में है अब हो गया करार,
और परस्पर बरत रहे हैं वे अब सद्व्यवहार :
दर्शन-प्यास सताती मेरे नयनों को जब उग्र;
अथवा हृदय विरह में जल-जल गिनता साँसें व्यग्र;
तो लख प्रिय-सुचित्र दृग पाता तृप्ति सुधा की खान,
और चखाता उर को भी चित्रित मधुमय पकवान;
और कभी दृग बनता मेरे उर का अतिथि अनूप
उसकी प्रेम-कथा में पाता कुछ निज अंश-सरूप;
अतः चित्र या मेरे प्रेम रूप से तुम सोल्लास,
यद्यपि दूर तथापि सदा रहते हो मेरे पास;
कहाँ विचारों से मेरे तुम जा सकते हो दूर,
मैं उनमें रहता वे तुममें डूबे हैं भरपूर;
या वे सोते भी हों तब भी चित्र तुम्हारा पास
उद्बोधित उर करता रच उर का दृग का उल्लास।

४८

मैं कितना रहकर सतर्क करता था पद-विन्यास,
तुच्छ वस्तु तक सहेजता था रक्षित कर सायास
निज उपयोग हेतु; जिससे वह रहे अपूर्व अभुक्त
घृणित असत्य-करों से, विश्वासी संरक्षण युक्त !
पर तुम, जिस पर न्यौछावर मेरे मोती-माणिक्य,
कितने सुख की खान, आज दुख कष्टों का आधिक्य,
सर्वश्रेष्ठ प्रियतम-मणियों में एकमात्र तुम रक्ष्य,
तुच्छ चोर के प्राप्य हुए हो कितने आज अरक्ष्य।
किसी कोष्ठ सामान्य में तुम्हें मैंने किया न बन्द,
छोड़ जहाँ पर तुम न, समझता पर बैठे स्वच्छन्द,
बस मम कोमल हृदय-कोष में तुम सुख से आसीन,
और वहाँ से आते-जाते सुख से तुम स्वाधीन;
डर है यही कि चुर जाओ तुम कहीं वहाँ से भी न,
बनता सत्य स्वयं तस्कर लख प्राप्य अमूल्य नवीन।

४९

उस दिन के प्रतिकूल कभी आया यदि वह दुष्काल,
जब निज त्रुटि पर देखूँगा तव भ्रू कुंचित, दृग लाल,
जब कि बिखेर चुका सब संभव राशि, तुम्हारा प्यार,
वह लेखा जाँचेगा सुविचारित विधि से निरधार
उस दिन के प्रतिकूल, निकल जाओगे बनी अजान,
जब, न करोगे निज दृग-रवि-छवि से मेरा सम्मान,
जब कि प्रेम का भाव बदल देगा निज पहला रूप,
गुरु-गभीर-दृढ़ कारण खोजेगा रचकर विद्रूप;
उस दिन के प्रतिकूल कर कवचित निज को सद्य
अपनी घोर निराशाओं के सहज ज्ञान के मध्य
और उठाता बीड़ा सा निज कर अपने प्रतिकूल,
वैध कारणों की तव, रक्षा करने को सब भूल :
मुझे रंक तजने को तुम पर वरद न्याय का हस्त,
क्योंकि प्यार करने का कारण मैं न कर सकूँ न्यस्त।

५०

कितना हो उदास यात्रा करता पथ पर बरजोर,
और जहाँ जाना चाहूँ वह श्रांत राह का छोर—
बतलाता वह शांति और विश्राम अरे ! भरपूर,
"तेरा वह प्रिय सुभग यहाँ से छूटा इतनी दूर !"
मेरा वाहन पशु, जो मेरे कष्टों से है श्रान्त,
मेरा भार उठाकर डिगमिग चलता मंद नितान्त,
सहज ज्ञान से बेचारा ज्यों जान गया यह बात
तुमसे बिछुड़न में, सवार को प्रिय न चाल, द्रुत-पात :
रंजित कशा न उसको उत्तेजित कर सकती, प्यार !
कभी-कभी है जिसे क्रोध देता जो उसको मार,
जिसका उत्तर देता है वह कर भारी सीत्कार,
उस पर कशाघात से तीखा जिसका मुझ पर वार;
क्योंकि उठाती सीत्कृति वह मम मन में यही विचार,
आगे है दुख ही दुख, पीछे छूटा सुख-संसार।

५१

खोज बहाने सकता ऐसे धीमी गति के प्राण !
अपने हत वाहन की जब तुमसे करता प्रस्थान:
तुमसे दूर चले जाने में जल्दी का क्या नाम ?
जब तक लौटूँ नहीं, न है जल्दी का कोई काम ।
पर बेचारा अश्व बहाने क्या पाएगा हन्त,
चाल तीव्रतम भी जब धीमी ही लगती अत्यन्त ?
कशाघात तब करूँ चल रहा यदपि वायु की चाल,
इस उड़ान में मुझे न गति का रहता तनिक खयाल;
कोई हय कामना तुल्य मम न पा सकेगा चाल;
अतः कामना, पटु प्रेमी की होने पर उत्ताल,
अपनी तेज दौड़ में हींसेगा (न मांस का पिंड);
पर प्रिय, देगा बना, प्यार हित, हय का ब्याज अखंड;
जाने में था चूँकि जानकर वह धीमा अभिराम,
तब ढिग आने में दौड़ूँगा उसकी छोड़ लगाम ।

५२

एक धनी हूँ मैं ऐसा जिसकी कुंजी सानन्द
उसको मधुर कोष तक ला सकती जो तालाबन्द,
प्रतिक्षण उसका नहीं निहारेगा वह अनुपम रूप,
कुन्द न पड़ जाए सहसा सुख की वह धार अनूप ।
वे आस्वाद अतः इतने परिमित, गुरुतर औ' अल्प,
कभी-कभी होते कट जाते जब कितने युग कल्प,
मूल्यवान् हीरे जितने होते वे विरल सजीव,
अथच महामणि हारयष्टियों में ज्यों विरल अतीव ।
उसी प्रकार समय रखता तुमको ज्यों मेरा कोष
या मंजूषा, जिसमें वस्त्र भरे रहते पा पोष;
एक विशेष घड़ी करने को मोदभरी सविशेष,
अपनी रक्षित रूप-राशि का करने नव-उन्मेष ।
तुम हो धन्य, तुम्हारे गुण करते हैं क्षेत्र-प्रसार,
पाकर जय हित, और न पा, आशा का, नव संचार ।

५३

कौन सार वह, जिससे बनी तुम्हारी काया भव्य,
अद्‌भुत छायाएँ कोटिक तुम पर अवलम्बित नव्य ?
छाया एक रखा करता प्रति जन प्रति व्यक्ति, निदान,
और एक तुम कर सकते सब को छवि-छाया दान।
करो अडोनिस-रूपराशि का वर्णन, वह प्रतिरूप
रंक तुम्हारी छवि का ही तो है वह छाया रूप;
हेलिन की मुख छवि पर था सौन्दर्य-कला का अन्त,
तुम यूनानी भूषा में नवचित्रित भव्य अनन्त :
वह बसन्तश्री, और विपुल वह ऋतु का नव भंडार;
एक तुम्हारी छवि की छाया के अनुरूप अपार,
और दूसरे का गुण-राशि तुम्हारी सा विस्तार,
है प्रत्येक दिव्य छवि में तेरी छवि का संभार।
सभी बाह्य लावण्यों में कुछ अंश तुम्हारा प्राण !
पर न किसी सा, कुछ न हाय! तुममें है उर स्थितिमान।

५४

कितनी और अधिक लगती छवि है छबि से परिपूर्ण,
वह मोहक सज्जा पा; जिसे सत्य दे करता पूर्ण;
है गुलाब सुन्दर पर सुन्दरतर लगता वह रूप
मधु-सुगंधि से, जो उसमें रहती है बसी अनूप।
होता है करील के फूलों में भी रंग अपार
जैसा होता है गुलाब की विमल गंध का सार,
वैसे ही काँटों पर हिलता लहराता कर खेल
ग्रीष्मवायु जब इन कलियों को खिला कराती केलि;
पर केवल है रंग के लिए ही उनका गुण-गान,
वे अनचाहे खिल मुरझाते पा न तनिक सम्मान;
झड़ जाते हैं; किन्तु न है ऐसी गुलाब की बान;
वे मुरझाते, होता मधुर-सुगंधों का निर्माण :
वैसे तुम, यह तेरा सुन्दर यौवन का मधु-भार,
मुरझाने पर कविता खींचेगी इस छवि का सार।

५५

स्वर्णखचित ये समाधियाँ या महल नृपों के भव्य
अधिक जिएँगे क्या सशक्त इन छन्दों से, रह नव्य;
पर तुम इनमें चमकोगे हो कहीं अधिक उद्दीप्त
मलिन काल-कर रगे खंडहर-पत्थर से अति दीप्त।
युद्ध विनाशी देंगे सभी मूर्तियाँ पलट-पछाड़,
झगड़े डालेंगे सब शिल्प कला प्रासाद उखाड़,
युद्धों की तलवारें, लपटें लोल जलाएँगी न
यह अभिलेख तुम्हारी स्मृति का, जो है सदा नवीन।
सभी भुलाने वाली रिपुता व मृत्यु के विरुद्ध
बढ़े चलोगे, तव यश का होगा न मार्ग अवरुद्ध,
उन सब भावी सन्तानों के भी मन में बरजोर।
महाप्रलय में ले जाएँगी, जग को जो कि बटोर।
उस दिन तक तुम स्वयं रहो जागृत जीवित छविधाम,
इनमें और प्रेमियों के नयनों में बस अभिराम।

५६

प्रेम, सत्व निज पुनर्दीप्त कर यह न कहें जनवृन्द,
तेरी धार क्षुधा से होती कहीं अधिक है कुन्द,
जो हो जाती तृप्त आज भोजन करने के बाद,
पर कल पुनः पूर्ववत् जागृत होती है अविवाद:
उसी प्रकार प्रेम तू बन जा, यदपि आज हो तृप्त
तेरे प्यासे नयन अघाकर हों मुकुलित परितृप्त,
कल फिर उसे निहार, न कर दे तू बिलकुल संहार
प्रेम भावना का, चिर शिथिल भावना का कर वार।
यह उदास अंतरिम काल हो, उस सागर सा भव्य
जो तट को बांटता जहाँ दो संवित्-प्रेमी नव्य
आते नित तट पर निहारते उसका वह अनुराग
वह वापसी प्रेम की बनता वह सुदृश्य वड़भाग;
अथवा यह हेमन्त भरा चिन्ता ठिठुरन के भार
मधुऋतु का आगमन बनाता बहुप्रार्थित त्यौहार।

५७

मैं हूँ तेरा दास करूं क्या बस इतना ही प्राण !
तेरी अभिलाषा के निमिष प्रहर का रक्खूं ध्यान;
मेरे पास अमूल्य समय कुछ है न बिताना शेष,
कोई कार्य न है करना जब तक तेरा न निदेश।
कैसे मंद-अनन्त- काल का कर सकता अपमान,
जब मेरे स्वामी, तेरी घड़ियों का रखता ध्यान,
और विरह की कटु घड़ियों का भी करता न खयाल,
एक बार कर विदा स्वसेवक को जब देते टाल,
इतना साहस कहाँ, करूँ ईर्ष्यावश यह कुछ ध्यान
तुम होओगे कहाँ, तुम्हारे कार्यों का अनुमान,
एक उदास दास सा, ठहर, न कुछ भी करता ध्यान,
बस यह ही हो जहाँ, वहाँ करते कितना सुख-दान :
सच ही इतना पगला प्यार कि जब तुम स्वेच्छा-लीन,
(तुम जो चाहो करो) मानता, बुरा वह जरा भी न।

५८

रोका विश्वनियन्ता ने रच मुझे तुम्हारा दास,
मन से भी न करूँ यंत्रित तव सुख-क्षण, वह उल्लास,
और न तुम से पूछ सकूं तव क्षण-क्षण का वृत्तान्त,
तव सेवक, जोहनी पड़ेगी तेरी बाट नितान्त !
तेरी फुरसत (तब इंगित-अनुचर) सहने दो सत्य
तव स्वातन्त्र्य जनित बंदीकृत अनुपस्थिति का नृत्य,
और धैर्य धर सब प्रकार से सहूँ सभी दुख-कोष
इन घावों के लिए तुम्हें देकर न तनिक भी दोष।
रहूँ जहाँ तुम भेजो, आज्ञापत्र त्वदीय महान्
तुम अपनी घड़ियों से स्वतः उठाओ लाभ निदान :
जो चाहो सो करो तुम्हारा ही है यह अधिकार,
निज हित कृत दोषों हित करना निज को क्षमा उदार।
मैं जोहूँगा बाट, भले ही यह यंत्रणा महान्;
तव स्वेच्छा को दोष न दे, हो वह सद् असद् निदान।

५९

यदि न तनिक हो नया यहाँ पर बल्कि वही सब राग
जो था पहले, कैसे छले हमारे गये दिमाग,
खोज हेतु जो सहते रहते कर श्रम अपरंपार
एक पूर्वतन पीढ़ी का दूसरा अपरिमित भार !
उस इतिहास हेतु यह संभव था, रख पीछे ध्यान,
कर रवि के पाँच सौ वर्ष-चक्रों तक का अनुमान,
किसी पुरातन पुस्तक में दिखलाती तव-छवि दिव्य,
चमका सर्वप्रथम मस्तिष्क क्योंकि लिपि में ही भव्य !
जो मैं लखता पूर्व-विश्व वह क्या-क्या सके बखान
इस सुगठित आश्चर्य तुम्हारे वपु का रच उपमान;
क्या हम सुधरे हैं या वे ही थे सुन्दरतर आप,
अथवा वैसा ही है प्रगति-चक्र का कार्य-कलाप।
नहीं मुझे निश्चय है देते थे वे कवि अनजान
सभी असुन्दरतर विषयों को अतिशय यश सम्मान।

६०

हैं बढ़तीं जैसे लहरें पथरीले तट की ओर,
त्यों भागतीं हमारी घड़ियाँ पाने अपना छोर;
पा लेती प्रत्येक पूर्ववर्ती का पहला स्थान,
एक शृंखला में श्रम करती सब उस ओर निदान।
जन्म और सुदिवस की पहली किरण नया उल्लास,
फिर यौवन को प्रखर-धूप जिससे पा मुकुट-विलास,
कुटिल ग्रहण करते वह छवि ग्रसने हित यत्न महान्,
काल, दिया जिसने था, अब विनष्ट करता निज दान।
काल मिटा देता वह यौवन बाह्य-लेप मधुभार,
सुन्दर छवि समरेखाओं में खोद गर्त अनुदार;
और प्रकृति आदर्श खाद्य का है करता आहार,
तनिक न बचता, उसका है भीषण कर्त्तन व्यापार।
फिर भी आशा है युग-युग जीवित रह मेरे छन्द,
गाएँगे तव कीर्ति, भले हो काल क्रूर मति मन्द।

६१

क्या तेरी इच्छा तेरी छवि रक्खे खुले समोद
मेरे भारी पलक सर्वथा श्रान्त निशा की गोद ?
क्या तुम चाहो नींद टूटती रहे हमारी नित्य,
जब हो मम आगे तेरी सी छायाओं का नृत्य ?
क्या यह तेरा दूत, भेजते हो तुम जिसे निदान
घर से दूर यहाँ मम कृत्यों का करने संधान;
मेरी लज्जापूर्ण दोष घड़ियों का करने शोध
जो तेरी ईर्ष्या का क्षेत्र और है अवधि अबोध ?
अरे न, तेरा प्यार, अधिक यद्यपि, उतना न विशाल;
यह है मेरा प्यार खुले रखता मेरे दृग-जाल;
मेरा अपना सच्चा प्यार थकावट को ललकार,
तेरे ही हित जगता रहता बन कर चौकीदार :
मैं तेरे हित जगता, जब तुम जगते हो अन्यत्र,
मुझसे दूर सुदूर, निकटतम अन्य जनों युत तत्र।

६२

घेरे आत्मप्रेम का दोष नयन मेरे मम अंग,
मेरा सब कुछ मेरी आत्मा औ' मेरे प्रत्यंग;
और न कुछ है इस कुदोष का कोई कहीं इलाज,
मेरे उर में इसका इतना व्यापक है अधिराज।
मेरे मन से, सुभग न मुझसे है कोई भी रूप,
ऐसी शुभ छवि कहीं न, ऐसा कहीं न सत्य अनूप,
और स्वहित कर सकूं गुणों का अपने यही बखान,
कहीं न किसी रूप में कोई है मुझ सा गुणवान्।
पर जब मेरा मुकुर दिखाता मेरा तात्विक रूप,
जर्जर जीर्ण पुरातन और धूप रंजित विद्रूप,
अपना आत्मप्रेम जँचता तब बिलकुल ही विपरीत,
आत्म प्रेम रत आत्मा की यह बिलकुल अनुचित प्रीत।
यह तुम (खुद मैं) जिसका निज-हित करता हूँ यश-गान,
तेरी यौवन-छवि से चित्रित कर निज आयु निदान।

६३

मेरा प्रिय होगा विरुद्ध इसके जैसा मैं आज,
कुटिल काल के घातक कर से जर्जर दलित अकाज,
युग ने शोणित सोखा जिसका और भरे मुख-गात
रेखाओं-झुर्रियों आदि से; जिसका यौवन-प्रात
वय की फिसलन भरी रात पर चलता रहा सदैव;
वे सब सुन्दरताएँ जिसका अब वह नृप अधिदैव,
मिटतीं जातीं या कि मिट चुकीं दृष्टि पलट से हन्त,
अपहृत करतीं जातीं उसका सारा रूप-बसन्त;
उस दिन के ही लिए हो रहा हूँ मैं अब सन्नद्ध,
नाशक-वय के क्रूर पाश के क्रूरत्व के विरुद्ध,
जिससे कभी न कर पाए वह मेरी स्मृति से शीर्ण
मम प्रिय का सौंदर्य, भले यह प्रेमी-जीवन दीर्ण।
अंकित इन रेखाओं में वह सदा रहेगा रूप,
अमर रहेंगी ये, इनमें वह भी, नित नया अनूप।

६४

मैंने देखीं काल कुटिल-कर से जब होकर भ्रष्ट
होतीं बीते युग की गौरव-गरिमा क्रमशः नष्ट;
अभ्रंकष प्रासाद भूमि लुंठित देखे जब जीर्ण,
दृढ़ समाधियाँ मर्त्य-रोष में होती देखीं शीर्ण;
जब-जब देखा लोभी सागर को बढ़ करता प्राप्त
तट की भू पर मनचाहा अधिकार-लाभ संप्राप्त,
और भूमि करती जलनिधि की धरती पर अधिकार,
हानि-लाभ, घटती-बढ़ती, घटता-बढ़ता भंडार;
जब-जब देखा मैंने स्थिति का यह आदान-प्रदान
और स्वयं स्थिति का ही होता हुआ विनाश निदान;
तब तब मुझे सिखाया इसने यही विचार-विलास—
काल छीन ले जाएगा मेरे प्रिय को सोल्लास।
यह विचार है मृत्यु तुल्य, कर सकता कुछ न हताश
रोता वह रखकर, डरता जिसका होने से नाश।

६५

शाश्वत द्रव्य आदि, पत्थर, धरती, या सिंधु असीम,
करती शक्ति सभी की कुंठित दुखद मृत्यु अति भीम,
इस प्रहार के आगे क्या टिक सकता है सौन्दर्य,
शिरिष सुमन से अधिक शक्त जिसका न रूप लावण्य ?
कैसे मधुऋतु मधु सुगंधि भी झरती रहे अरुद्ध
कुटिल काल के दारुण कुलिश पाश के कहो विरुद्ध,
जब अटूट चट्टानें भी हैं नहीं सुदृढ़ बलवान्,
और न द्वार लौहमय, सभी काल के कवल निदान ?
आह भयावह चिन्तन, कहाँ काल की मणियाँ भव्य !
बच सकतीं हैं काल-पाश से उसकी बनें न हव्य ?
कौन सुदृढ़ कर रोक सकेगा उसका पद-संचार ?
कौन रोक पाएगा वे छवि-नाशक क्रूर प्रहार ?
कोई नहीं, न जब तक है समूल यह अद्भुत बात,
प्यार श्याम मसि में मेरा चमके उज्ज्वल अवदात ।

६६

इन सब से थक चिर-विश्रान्तिद मृत्यु चाहता शान्त,
जैसे जन्मजात भिक्षुक देखना नष्ट उद्भ्रान्त--
और सर्वथा निर्धन पहने वस्त्र अमूल्य अपार,
और विशुद्ध हुआ विश्वास अनृत-शपथित--त्रेकार,
और सुवर्ण प्रतिष्ठा अस्थिति में पड़ रही सलज्ज,
और सुभग कौमार्य भंग गणिकाव्रत सा निर्लज्ज,
और उचित परिपूर्णता विकृत पा अनुचित अपमान,
और शक्ति असमर्थ हुई पाकर पंगुता निदान,
और कला का शासन द्वारा छिना वाक् स्वातन्त्र्य,
और नियंत्रित करती भूल (वैद्य सी) कौशल-तंत्र,
और सत्य सीधे का नाम पड़ गया अति सारल्य,
और असद् शासक का हुआ हंत सद् बंदी तुल्य :
इन सब से थक पा लूँगा मैं इन सब से निर्वाण,
छोड़ यहो मरने में, छोड़ एकल प्रेम निदान ।

६७

उस जग में वह जिये क्यों जहाँ यह कलंकमय छूत,
दे अपनी समुपस्थिति से अपवित्रता बना अपूत,
यह कि पाप उससे पाता है लाभों की भरमार,
उसकी संगति से अपने को भूषित कर बेकार ?
क्यों मिथ्या चित्रण आँके उसका मुख-छवि-बंधान,
और हरे उसकी जीवित द्युति का मृत रूप निदान ?
बेचारी सुन्दरता खोजे अप्रत्यक्ष क्यों भाव
उपमा के गुलाब, जब उसका सच्चा सुभग गुलाब ?
क्यों वह जिए कि दिवालिया जब प्रकृति, अभाव अपार,
सुभग शिराओं से न पुलकमय जब शोणित संचार ?
केवल वही, न उसका कोई अन्य कोष अब शेष,
और अनेक गर्व रख, उससे पाता प्राणोन्मेष।
वह सहेजती उसे दिखाने को निज वैभव-भार
पूर्वकाल में, जिसका अंतिम रूप आज अनुदार।

६८

यों उस युग का मानचित्र अंकित उस मुख में आज,
जब सुन्दरता हँस मुरझाती थी, ज्यों सुमन-समाज,
सुन्दरता के कृत्रिम चिह्नों के योजन से पूर्व
या सजीव मुख-छवि में उनके संयोजन से पूर्व
पहले चिकुर सुनहले मृत-जन के सब सुभग अमाप्य,
सब के सब झड़ जाते थे वे समाधियों के प्राप्य,
एक नया जीवन पाने को पा शिर अन्य द्वितीय,
जब तक सुन्दरता के मृत कच रचें अन्य रमणीय :
उनमें वे घड़ियाँ विराजतीं जीर्ण परन्तु पुनीत,
बिलकुल भूषा रहित और जो स्वतः सत्य का गीत,
लेकर नहीं अन्य से, करने दुनियाँ को रंगीन,
और चुरा नूतन सज्जा हित वस्त्र जीर्ण कोई न;
मानचित्रवत् उसे प्रकृति है रही सहेज बंटोर,
असत् कला को दिखलाने पिछला सौन्दर्य अछोर।

६९

तेरे वे सब अंग लोक-दृग जिनको रहे निहार
उनमें त्रुटि न, सुधारें जिसको हृद्गत विमल विचार :
जिह्वाएँ सब आत्मवाणियाँ देती तुझे निदान,
प्राप्य अरंजित कह सच जिसका रिपु भी करें बखान।
यों तेरा बाह्याँग बाह्य-यश से अनुरंजित प्राण;
पर वे ही जिह्वाएँ करतीं जो तेरा यश-गान,
अन्य स्वरों में इस सुकीर्ति का करतीं हैं संहार,
लोचन-पथ से आगे और झाँककर दूर अपार।
वे देखतीं तुम्हारे मन की सुन्दरता का रूप
उसे मापती तव-कृत्यों से कर अनुमान अनूप;
तो फिर उनके (वृषल) विचार यदपि थे नयन कृपालु;
तेरे सुभग सुमन में जोड़ें घास-गंध विकराल :
क्यों न तुम्हारे रूप तुल्य है तेरा गंध वदान्य,
समाधान यह—तू सब का बन रहा प्राप्य सामान्य।

७०

बने कलंकित तुम, होगी यह तेरी त्रुटि न अपार,
क्योंकि कलंक चिह्न है रहा सदा सुषमा-आगार;
रहे सदा संदिग्ध सभी सुन्दरता के शृङ्गार,
एक काक उड़ता जो स्वर्ग पवन में पंख पसार।
अतः सुभग तुम करता है कलंक तेरा सम्मान,
बढ़ा तुम्हारा मूल्य काल भी देता अतिशय मान;
कुटिल कीट भी करता कोमलतम कलिका को प्यार,
तुझमें प्रस्तुत है विशुद्ध अकलंकित यौवन-भार।
बिता चुके उन दिवसों का लुक-छिप आक्रमण नितांत,
या तो रह अपराजित या विजयी को कर आक्रान्त,
पर यह तव-यश हो सकता, उतना तव-यश न अपार,
जो बाँधे ईर्ष्या को पाती जो अनुदिन विस्तार :
यदि न अतरित करता कुछ संदेह तुम्हारा रूप,
तो केवल तुम पाते हृदयों के साम्राज्य अनूप।

७१

मेरे मरने पर मेरे हित करना बहुत न शोक
बस तब तक जब घोर कठोर घंटियाँ बजें अरोक
चेतातीं जग को मैं पामर जग से गया सिधार
पामरतम कीड़ों के साथ-साथ रहना निरधार :
यदि तुम पढ़ो पंक्ति यह मत करना उस कर की याद
जिसने इसे लिखा था; करता प्यार तुम्हें अविवाद,
इतना कि निज मधुर भावों में भूलोगे बेरोक,
मेरी बातें सोच किया यदि तुमने मुझ पर शोक।
हाँ, यदि (कहता मैं) देखो तुम ये मम छन्द अधीर,
जब शायद मिट्टी में मेरा होगा मिला शरीर,
तो तुम लेना इस जन का उतना न नाम बेकार;
मम जीवन-सह भले नष्ट होने देना निज प्यार :
देखे कहीं न तेरा चतुर जगत् सावज्ञ विलाप,
मेरे जाने पर न चिढ़ाए तुमको मुझसे आप।

७२

कहीं न तुमसे कहे बताने को दुनियाँ अनुदार
मुझमें ऐसे क्या गुण थे जो मुझे करो तुम प्यार
मरने पर भी—अतः भूलना सुभग ! मुझे चुपचाप,
क्योंकि न तनिक सिद्ध कर सकते मुझमें सुगुण-कलाप;
जब तक खोज न लो कुछ भी तुम गुणमय मिथ्या घात,
करने मेरी असफलता से अधिक युक्तिमय बात,
मेरे मृत शरीर का किया कहीं अतिशय गुणगान
उससे अधिक करेगा स्वतः कृपण सच जितना दान :
कहीं न बने असत्य तुम्हारा इससे सच्चा प्यार,
कि तुम प्यार में मिथ्या कहते मम हित बने उदार,
साथ देह ही के मेरी, समाधि ले मेरा नाम,
मुझे या तुम्हें लज्जित करने को न जिए बेकाम।
लज्जित हूँ मैं छोड़ तुम्हारे हित यह सब कुछ भार,
तुम भी होगे लज्जित कर गुणहीन वस्तु को प्यार।

७३

अरे, वर्ष की उस ऋतु को तुम मुझमें सको निहार,
जब पत्तियाँ पीत या तनिक न या कुछ करें बिहार
उन शाखाओं पर, हिलतीं जो पाकर शीत निदान,
निर्जन उजड़े राग जहाँ विहगों के थे कल गान।
मुझमें देख सको वैसे दिन की झाँकी जब आप
रवि छिपता पश्चिम सन्ध्या मुरझाती है चुपचाप,
हर ले जाती क्रमशः काली निशा उसे कर थाम,
स्वयं दूसरी मृत्यु सभी को जो देती विश्राम।
ऐसी आग की चमक हो तुम मुझमें रहे निहार,
जो है पड़ी स्वयौवन भस्म राशि का ले आधार,
उसी मृत्यु शय्या पर बुझ जाएगी निश्चित शान्त,
जिससे पोषित थी उससे ही शोषित हो दुःखान्त।
यह तू देख रहा, यह करता दृढ़ तव प्यार अपार,
तुझसे बिछुड़ेगा झट, उसको करना सम्यक् प्यार :

७४

किन्तु करो सन्तोष : गिरफ्तारी जब यह अति क्रूर
प्रतिभू लिए बिना ले जाएगी वह मुझको दूर,
इन पंक्तियों में रखे मेरा जीवन चाव विशेष,
जो स्मारक के तुल्य रहेगीं पास तुम्हारे शेष।
इन्हें निहारोगे जब, दीख पड़ेगा वह ही चित्र
वही अंग जो निकट तुम्हारे था अतिमात्र पवित्र।
मिट्टी मिट्टी को ही लेगी, उसकी वह ही प्राप्य;
मेरी आत्मा तो तव, वह मम अंग सुचारु अमाप्य :
तो तुमने खोई जीवन की नगण्य बूँदें मात्र,
कीड़ों का आखेट, हुआ है मृत वह मेरा गात्र,
कुटिल काल के पाश की बना कायर जय अविवाद,
बहुत तुच्छ है काम करो तुम यदि उसकी कुछ याद।
उसका मूल्य यही जिसका है इसमें ही आवास
वह है यह ही और बच रहा है यह तेरे पास।

७५

तुम मेरे भावों को ज्यों जीवन को भोजन प्रेय,
या धरती को शुभ ऋतु पावस बूँदें देतीं श्रेय,
तेरे ही सन्तोष हेतु मैं करता वह संघर्ष
जैसा कृपण और उसके मन में धन हित दुर्धर्ष :
गर्वित कभी प्राप्त ज्यों कर आनन्द अतुल सन्तोष
डरता कभी, चुरा लेगी क्या चोर आयु वह कोष;
एकाकी तेरे ढिग रहना कभी श्रेष्ठतम मान
कभी सुखी यह देख कि जग देखे मम मोद महान्:
भूल सभी कुछ कभी एकटक तुमको मात्र निहार,
क्रमशः कभी देखने तक को हो बिलकुल लाचार;
रखकर या न चाहकर कोई हर्ष उसी को छोड़,
प्राप्त या कि प्राप्तव्य तुम्हीं से जो प्रहर्ष बेजोड़।
यों अनुदिन चाहा करता हूँ और तुष्ट भरपूर।
सबके हेतु क्षुधातुर हो, या सबसे ही रह दूर।

७६

क्यों नूतन अभिमान रहित हैं बिलकुल मेरे छन्द ?
बिलकुल विरहित अंतर या क्षण-परिवर्तन से बंध ?
क्यों रह युग के साथ न मैं करता हूँ दृष्टि निपात
नए तरीकों, नए शब्द बंधों पर निज दृक्पात ?
क्यों लिखता मैं अब भी वही एक पहला संगीत,
और खोज को रखता जकड़ पिष्टपेषित गा गीत,
है प्रत्येक शब्द बतलाता प्रायः मेरा नाम
मूल बता निज और जहाँ से आए वे अभिराम ?
प्रिय, यह खूब समझ लो लिखता सदा तुम्हारे गीत,
तुम औ' प्रेम बने दो अब भी मेरे भाव पुनीत;
अतः सुभगतम मम, जर्जर शब्दों का नव परिधान,
फिर उसका व्यय करता जिसका व्यय हो चुका निदान,
जैसे रवि होता नित नूतन और वृद्ध बड़भाग,
वैसे मेरा प्यार गा रहा अब भी पिछले राग।

७७

तेरा मुकुर कहेगा कैसे झड़ता तेरा रूप,
तेरी घड़ी कहेगी कैसे क्षण-क्षण गत अपरूप;
होगा खाली पृष्ठों में अंकित तव मन का भाव,
इस पुस्तक की सीख सीख लोगे तुम यह रख चाव।
बिंबित वे झुर्रियाँ तुम्हारे दर्पण में अविवाद,
गहन गुहा विवरों सी, तुझे करा देगी यह याद;
चोरी-चोरी घड़ी-पलायन से जाओगे जान
खिसक रहा है काल सतत शाश्वत की ओर अजान।
अब देखो क्या नहीं सहेज सकेगी तेरी याद,
शून्य श्वेत कागज में औ' तुम, जानोगे अविवाद
वे शिशु पोषित, और तुम्हारी मति की उपज अनूप,
तेरे मन का नव-परिचय पाने को रख नव-रूप।
ये स्तुति पद, इन पर जितनी डालोगे दृष्टि अमूल्य,
तुझे लाभ देंगे कर तेरी पुस्तक को बहुमूल्य।

७८

वाणी तुल्य तुम्हारा ध्यान किया है कितनी बार,
छन्दों में सुन्दर सहायता पाई है हर बार,
जो प्रत्येक अपरिचित कवि ने कर उसका उपयोग,
पाया निज कविता हित तव आश्रित रह परम सुयोग।
तव नयनों ने गूँगे को सिखलाई उन्नत तान,
दे कल्पना उड़ाया ऊँचे को भारी अज्ञान,
शिक्षित पंखों में भर दी गति एक परम उत्ताल,
सुन्दरता की श्री दूनी कर दी कुछ जादू डाल।
फिर भी इन छन्दों से पाओ सर्वाधिक अभिमान,
जिनका तुमसे जन्म भरी जिनमें तेरी ही तान :
अन्य कलाकृतियों में करता बस शैली-परिशोध,
और कलाएँ तव-शोभा से शोभित हैं सामोद;
पर मेरी सब कला तुम्हीं, देते वह गति उत्तान
विद्या जितना स्वयं उठाते भारी मम अज्ञान।

७९

जब मैं ही करता था एकाकी तेरा बस ध्यान,
मम छन्दों में ही गूंजा करती थी तेरी तान;
गिरता जाता पर अब मेरा चारु छन्द-संस्थान,
मेरी दुर्बल प्रतिभा रही अन्य को दे निज स्थान।
मान रहा मैं सुभग, तुम्हारी सुन्दरता की तान
एक योग्यतर कविवर के श्रम की है पात्र निदान;
फिर भी तुममें तेरा कवि जो भी करता है खोज,
तुझसे लूट, फिर तुझे ही लौटाता है वह ओज।
करता तव-गुण-गान तुम्हीं से चुरा शब्द वे भव्य
तेरे ही आचरण से तुझे छवि देता है नव्य,
तेरे कलित कपोलों से पा, कर न सके यश-गान
तेरा अधिक, बस वही जो तुममें है निहित निदान।
अतः कृतज्ञ बनो मत उसके सुनकर उसकी बात,
जो कुछ वह कहता सब उसको मिला तुम्हारे हाथ।

८०

होता कितना अधीर जब लिखता तव-गीत-ललाम,
जान कि एक सुभगतर प्रतिभा लेती तेरा नाम,
उसके यश में सभी लगा कर अपनी शक्ति अचूक,
गाती कीर्ति-राग तव, मुझे बना देने को मूक;
किंतु चूँकि तव गुणनिधि (का है सागर सा विस्तार)
सहता निम्न तथा गर्वोन्नत नावों का संचार,
मेरी है प्रगल्भ लघु नौका, उससे तुच्छ अपार,
तेरे विस्तृत छवि निधि को स्वेच्छा से करती पार।
तैरा देगी मुझे तुम्हारी उथली मात्र सहाय
जब कि उसे वांछित है निःस्वन गहन तुम्हारी काय;
अथवा मैं जर्जर तरणी हूँ मूल्यहीन है रूप
जब कि विशाल भव्य गर्वोन्नत वह है पोत अनूप :
तो यदि वह पाए समृद्धि, औ' मैं पाऊँ धिक्कार;
सबसे बुरा यही बन गया नाश मम, मेरा प्यार।

८१

जीकर तव समाधि-अभिलेख करूँगा मैं उत्कीर्ण,
अथवा तुम जीना जब मिट्टी में मिल जाऊँ, जीर्ण;
मृत्यु यहाँ से तेरी स्मृति को भुला न सकती आप,
यद्यपि होंगे विस्मृत मेरे सब गुण अंग-कलाप।
नाम अमर-जीवन तेरा रख सके यहाँ से हंत,
एक बार जाने पर, मेरा जग हित होगा अंत :
भूमि मुझे देगी लेकिन बस कब्र एक सामान्य,
मर तुम जब कि लोक-दृग में पाओगे स्थान वदान्य।
तेरी सुभग समाधि बनेंगे मेरे कोमल छन्द
अब तक न बने दृग भी जिनको पढ़ पाएँगे मन्द;
भावी लेखनियाँ तेरी स्थिति के गाएँगी गीत,
मर जाएँगे जब इस जग के प्राणी सभी पुनीत;
तदपि जिओगे तुम (मेरे गीतों में ऐसी तान)
लेंगे मनुज साँस जब तक या बने रहेंगे प्राण।

८२

मान रहा मैं तुम्हें नहीं हैं रुचिकर मेरे छन्द,
अतः निरीह सुना-अनसुना कर सको तुम स्वच्छन्द
अरे, समर्पण शब्दों को, लिखते कवि जिन्हें अनन्य
निज सुन्दर विषयों में जिनसे प्रति कृति होती धन्य।
जितना सुन्दर रूप तुम्हारा उतना सुन्दर ज्ञान,
मेरी सीमा से बाहर तेरे गुण-यश का गान,
अतः विवश हो खोज रहा हूँ भाव नए कुछ रंक
अच्छे दिवसों के पाने को कुछ ताजे से अंक।
और प्रिय सुभग, जब कर लेंगे वे उस सब की खोज
जो भी अतिरंजित कुछ सीख सिखा सकता है ओज,
तो सच तुम सुन्दर, सचमुच ही सहानुभूति निधान
सच कवि ने सच सीधे शब्दों में तव किया बखान;
उनके कृत्रिम चित्रण का संभव कुछ सद् उपयोग,
जब चाहते कपोल रक्त; तुझमें यह असदुपयोग।

८३

आवश्यक तव चित्रण अरे ! कभी यह सोचा था न,
अतः चित्र तेरी छवि का कोई भी खींचा था न।
मैंने देखा, या समझा कि देखता हूँ तव रूप
कवि की कोरी कला-कल्पना से है कहीं अनूप :
अतः तुम्हारे छवि-वर्णन हित बना रहा मैं मूक
कि तुम स्वयं जीवित दिखला दोगे यह बात अचूक
कितने पीछे रहते नव लेखक कर श्रम आजन्म
उस गुण का वर्णन करने में जिसका तुझसे जन्म।
मेरी त्रुटि लख तुमने मुझको दिया मौन का दान,
वही बनेगा मेरा यश रहकर मैं मूक निदान;
नहीं करूंगा मैं छवि का संहार, बना चुपचाप,
जब कि अन्य जीवन दे रच देंगे समाधि संताप,
तेरे एक नयन में उससे कहीं अधिक है जान
डालेंगे जितनी ये दो कवि कर तेरा यश-गान।

८४

कौन गा रहा यश सर्वाधिक कह सकता रख टेक
इस अनुपम वर्णन से अधिक कि तुम हो तुम से एक ?
कहाँ छिपा है छवि का यह अनुपम भंडार महान्,
जो तव उपमा बना जहाँ जन्मा तेरा उपमान ?
वह लेखनी दरिद्र रंक पामर बिलकुल अनजान,
निज प्रतिपाद्य में भरे जिसने न नए गौरव-गान;
पर तेरी छवि का कवि यदि कह सका सहज यह बात
तुम तुम से हो तो उसका वर्णन गौरव विख्यात,
निज छवि-कृति की बस प्रतिकृति दो रचने उसे अनूप,
उसे बिगाड़े नहीं प्रकृति ने रचा स्पष्ट जो रूप,
इससे ही फैलेगा उस वाणी का कीर्ति-पराग,
जाएँगे सर्वत्र अलापे उस शैली के राग।
निज मधु वरदानों में तुम जोड़ते एक अभिशाप,
बन यश-लोलुप, जो बिगाड़ता तेरा कीर्ति-कलाप।

८५

मेरी मूक गिरा रहती है मौन शान्त चुपचाप,
जब कि कीर्ति के तेरे गीतों का बहुमूल्य कलाप,
स्वर्ण लेखनी से करता रक्षित स्वरूप अभिव्यक्त,
विविध वाणियों से प्रदत्त बहुमूल्य पदों में व्यक्त।
मैं सोचता विचार सुभग, वे लिखते शब्द अनूप,
तदपि 'तथास्तु' कहूँ बेपढ़े पुजारी के अनुरूप
सब पूजा-छन्दों को लिखते जिन्हें योग्य विद्वान्
रच कर मजी लेखनी द्वारा मार्जित रूप-विधान;
मैं कहता 'यह ऐसा' 'यह सच' सुन तेरा यश-गान
उस अधिकाँश कीर्ति में और जोड़ कुछ अधिक निदान;
पर मेरे विचार का, जिनका तुम पर प्यार अपार,
यदपि शब्द आते पीछे, है सर्वप्रथम संचार।
करो दूसरों का सजीव शब्दों के ही हित मान,
मूक विचारों हित मम, जिनका परिणति में व्याख्यान।

८६

थी यह क्या उसके महान् छन्दों की गर्वित चाल,
लक्ष्य पुरस्कृति जिसकी थी बहुमूल्य तुम्हीं सुविशाल,
जिसने मेरे मन में जकड़ दिए परिपक्व विचार,
बना वही उनकी समाधि जो उनका गर्भाधार?
क्या यह उसकी प्रतिभा वर-कवि-प्रेत-प्रेरणा प्राप्त
लिखने हित लोकोच्च कि जिसने मुझको किया समाप्त?
नहीं, न तो वह, और न उसके साथी जो पा रात,
देतें उसे सहाय कर सके मम छन्दों का घात।
वह या उसका वह चिर-परिचित सुजन प्रेत ही आप
प्रति निशि देता उसे खाद्यवत् जो शुचि बुद्धि-कलाप,
न मम मौन के विजयी न वे बजा सकते यह गाल;
उनके भय से न मैं हो गया था विह्वल बेहाल।
छन्द अनुग्रह ने तेरे जब उसके भरे स-चाव
भूल गया सब वस्तु, हो गए दुर्बल मेरे भाव।

८७

विदा, रख सकूँ मैं उससे तुम कहीं अधिक बहुमूल्य,
और साथ ही खूब जानते हो तुम अपना मूल्य;
तव योग्यता-पत्र तुमको कर रहा मुक्त निर्बन्ध;
बिलकुल ही समाप्य हैं तुम पर मेरे सारे बन्ध।
तुम्हें पा लिया मैंने यह थी तेरी करुणा, दान,
वरना इस समृद्धि का पात्र कहाँ था मैं अनजान ?
इस सुन्दर उपहार का न कुछ मुझमें हेतु विशेष,
वापस अतः हुआ मेरा एकस्व हंत सविशेष।
तुमने स्वयं दिया निज गुण के प्रति बनकर अनजान,
या मुझको दे दिया जिसे यह समझा और निदान;
भेंट विशाल तुम्हारी जिसका हुआ भूल से दान,
आती वापस घर होने पर नवनिर्णय, पा ज्ञान।
पाया मैंने तुम्हें स्वप्न में ज्यों बन गया महान्
सोते पर सम्राट्, जागने पर कुछ भी न निदान।

८८

तू जब मुझे बताना चाहेगा गुणहीन अजान,
डाल घृणा की दृष्टि गुणों पर मेरे, तृणवत् मान,
मैं अपने प्रतिकूल लड़ूँगा होकर तेरी ओर,
तुझे सत्य ठहराऊंगा तू भले झूठ कह घोर;
अपनी दुर्बलताओं को जानता खूब मैं आप,
दे सकता मैं तर्क तुम्हारे, कह कर कथा-कलाप
अपने गुप्त पाप की जिनसे मैं सकलंक अतीव,
जिससे मुझे छोड़ने में पा लोगे कीर्ति सजीव;
इससे लाभ मुझे भी मिल जाएगा अपरंपार;
तेरे ऊपर कर न्यौछावर सब निज मधुर विचार,
अपनी करता रहूँ हानियाँ मैं अगणित हर बार;
तुझको पहुँचा लाभ, वही मम दुहरा लाभ अपार।
मेरा ऐसा प्यार तुम्हारे साथ यही सम्बन्ध,
तेरे लाभ हेतु सह लूँगा हानि सभी निर्द्वंद।

८९

कह दो छोड़ दिया है मुझे देख कुछ दोष कराल,
उस अपराध की करूँगा मैं व्याख्या विपुल विशाल :
कह दो मुझे पंगु लड़खड़ा उठूँगा तुरत निदान;
तेरे तर्कों का न करूँगा निज हित प्रत्याख्यान।
सुभग, न कर सकते मम तुम उसका आधा अपमान,
वांछित परिवर्तन हित रचने को कुछ ब्याज-विधान,
जितना मैं अपमान करूँगा अपना लख तव इष्ट;
बन जाऊँगा तुरत अपरिचित कर सब परिचय नष्ट;
छोड़ूँगा मैं राह तुम्हारी; और न तेरा नाम
मेरे मुख में आएगा, प्रिय ललित मधुर अभिराम;
कहीं न (विपुल अपावन) मैं कर दूँ उसका प्रतिघात,
कहने लगूँ पूर्व-परिचय की शायद अपनी बात।
निज प्रतिकूल तुम्हारे हित मै लूँगा रण-व्रत धार,
जिसको करते घृणा करूँगा कभी न उसको प्यार।

९०

तो जब चाहो करो घृणा; यदि कभी तो न क्यों आज;
जब बिगाड़ने तुली हुई है दुनियाँ मेरे काज,
भाग्य थपेड़ों का दो साथ झुका मुझको झकझोर,
मत आना बन हानि आखिरी तुम पीछे की ओर :
अरे, न आना तब, जब मेरा उर ले यह दुख झेल,
एक पराजित पीड़ा के फिर पार्ष्णिरूप बगमेल;
तूफानी रात के बाद बन कर वर्षा का प्रात,
ठहरे रह करने को साभिप्राय एक विनिपात।
छोड़ोगे यदि मुझे, न तो छोड़ना सभी के बाद,
जब छोटे मोटे दुख कर डालें मुझको बरबाद;
पर हमले की प्रथम झोंक में—जो चख लूँ अविवाद
बुरे से बुरे भाग्य थपेड़े का पहले ही स्वाद;
झोंके ये पीड़ा के जो लगते पीड़ा-संघात,
तव क्षति की तुलना में रंच न वैसे होंगे ज्ञात।

९१

कुछ को गर्व स्वकुल पर, कुछ को कौशल का अभिमान,
कुछ को निज समृद्धि का, कुछ को देह-शक्ति की शान;
कुछ को वस्त्र का यदपि जिनका भद्दा नवनिर्माण;
कुछ को पाले पशु-पक्षी पर, घोड़ों पर है शान;
होता है प्रति मनोवृत्ति का साथी कुछ आनन्द,
जिसमें वह पाती है सबसे अधिक हर्ष निर्द्वन्द;
पर ये आकर्षण-विशेष हैं मेरे नहीं प्रमाप,
इन्हें श्रेष्ठतर ही मानूँ, पा महाश्रेष्ठतम आप।
लगता उच्च कुलों से ऊँचा मुझे तुम्हारा प्यार,
है समृद्धि से धनी, वस्त्र से मूल्य अतीव अपार,
पक्षी हय से इसका कहीं अधिक आनन्द महान्;
पाकर तुझको सब गर्वों से ऊँची मेरी शान।
यही अभागा हूँ, जो ले जा सकता है तू छीन
सब कुछ, मुझे बना सकता सर्वाधिक भाग्य विहीन।

९२

कर लो जो चाहो तुम खिसक भागने हित चुपचाप,
निश्चित, जीवन भर को मेरे बाँट पड़े तुम आप;
तेरे प्यार से अधिक जीवन रह न सकेगा हन्त,
क्योंकि तुम्हारे उसी प्यार पर निर्भर वह अत्यन्त।
बुरे से बुरे दुख से मुझको हो क्यों भीति दुरन्त,
जब लघुतम दुख से मेरे जीवन का निश्चित अन्त।
देख रहा हूँ मेरी स्थिति का कहीं सुभग संलाप
उससे जो तव मनोवृत्ति पर निर्भर रहती आप :
निज अस्थिर मन से न सता सकते तुम मुझको रंच,
क्योंकि टिका विद्रोह तुम्हारे पर मम प्राण-प्रपंच।
अरे, मिला क्या ही सुन्दर मुझको सुखमय अधिकार,
सुख से मरने को सुख से पाने को तेरा प्यार !
पर बेदाग सुभग वह कौन न जिसको कुछ भय-भान ?—
तुम कर सकते वंचन वह जो सकूँ भी न मैं जान।

९३

अतः जिऊँगा मैं समझूँगा तुम्हें सुनिष्ठ अपार,
एक प्रवंचित पति सा; प्रेम रूप फिर प्रेमागार
अब भी मुझे लगेगा, यद्यपि बदला हुआ नवीन;
तेरी दृष्टि साथ मेरे, अन्यत्र किन्तु उर लीन:
चूँकि न तेरे नयनों में हो सकता घृणा निवास,
अतः न होगा मुझको इस परिवर्तन का आभास।
बहु दृष्टियों मध्य झूठे उर का सब इतिहास
लिखा वृत्तियों, भ्रूकुंचनों, झुर्रियों में सविलास;
किन्तु सृष्टि कर तेरी दिया स्वर्ग ने यह आदेश,
तेरे मुख पर सदा रहेगा मधुर प्रेम सन्देश;
हों कुछ भी तेरे विचार या उर के कार्य कलाप,
कह न तनिक इससे तव दृष्टि करेगी मधुरालाप।
आदिम नारी के निषिद्ध फल सा तव रूप विकास,
यदि तव सद्गुण वही न जैसा तव सौन्दर्य विलास ?

९४

जो सशक्त क्षति पहुँचाने में करें न वैसी घात,
जो करता न वही, दिखलाते प्रायः वे जो बात,
अन्यों को उद्वेलित करते स्वयं शिला से शान्त,
जो रहते हैं स्तब्ध लालचों में पड़ते न प्रशान्त;
उचित वही पाते हैं दिव्यगुणों का उत्तरदान,
व्यय से रखते बचा प्रकृति की वे संपत्ति निदान;
अपनी मुख मुद्राओं के हैं वे स्वामी अधिराज,
उनके गुण का वाहक सा है बाकी लोक-समाज।
होता है वसन्त के हित सुन्दर वसन्त का फूल
निज हित तो खिलता-मुरझा जाता बस सब कुछ भूल;
पर यदि उसी फूल में है संक्रामक कीट विकार,
घृणित प्यास भी उसके गौरव को देती धिक्कार :
सुन्दरतम हो जाते कटुतम कर कुत्सित व्यवहार;
सड़ी अगन्ध कमलिनी, कहीं घास से भी बेकार।

९५

अपनी शर्म बनाते तुम कितनी मोहक छविमान्,
जो कि सुगन्धित गुलाब के कीड़े सी बनी निदान,
तव विकचित यश-सुन्दरता की बनती लांछन आप !
अरे, कौन मधुकोष छिपा लेता जो तेरे पाप !
वह मुख जो कहता तव-वय के कथावृत्त व्यापार,
तेरी क्रीड़ाओं पर करके अनियंत्रित बौछार,
कह न सके अपकीर्ति, एकविध यश ही यह अभिराम :
कुप्रवाद ही एक सुशोभित करता तेरा नाम।
अरे, मिला उन पापों को कैसा सुन्दर प्रासाद
चुना जिन्होंने तुमको अपने रहने हित अविवाद !
जहाँ सुभगता-पट ढँक लेता सभी कलंक अपार,
सब कुछ बन जाता सुन्दर जो लोचन सकें निहार !
प्रिय, यह रखो सँभाल मिला है जो विशेष अधिकार,
दुरुपयोग से तेज छुरी की भी जाती है धार।

९६

कुछ कहते हैं दोष तुम्हारा वय, कुछ क्रीडाराग;
कुछ कहते तव सुषमा यौवन, मृदु-क्रीड़न अनुराग;
सुषमा दोष बहुत कुछ दोनों का होता सम्मान :
आते शरण दोष उनको करते तुम सुषमावान्।
सम्राज्ञी की ललित अँगुलियों पर होकर आसीन
हैं महार्घ समझे जाते हीरे जो मूल्य विहीन;
त्यों वे त्रुटियाँ जो तुममें होती हैं दृष्ट, असत्य
शुभ में परिवर्तित होतीं मानीं जातीं हैं सत्य।
क्रूर भेड़िया ठग सकता अगणित मेमने निदान,
यदि वह एक मेमने सा सीख ले दृष्टि-संधान !
आकर्षित कर सकते तुम कितने ही दर्शक लोग।
अपनी पूरी शक्ति का करो यदि तुम कुछ उपयोग !
पर न करो यह, मैं करता हूँ तुमको ऐसा प्यार,
तुम मेरे, तो तेरे सद्यश पर मेरा अधिकार।

९७

निठुर शीत सा कितना दारुण यह था विरह अपार
तेरा, तुम बीतते वर्ष का जो सुखमय त्यौहार !
कैसी ठिठुरन सही और देखे दुर्दिन विकराल !
जीर्ण माघ की वह सर्वत्र शून्यता कुटिल कराल !
उस पर अरे वियोग-काल, यह था वसन्त का काल,
हिलमिल गाते सुभग शरत् सी गर्भित ऋद्धि विशाल,
धारे नववय का वह परम-अपावन क्रीड़न-भार,
पति की मृत्यु बाद विधवा के गर्भतुल्य साकार;
पर प्रतीत होता था मुझको यह प्रसूति संभार
निराश्रितों की आशा, पितृवंचित फल सा बेकार;
तेरी आश्रित मधु-ऋतु उसके मधुरिम वे त्यौहार,
पर तुम दूर, कीर-पिक कलरव अरे, मूक लाचार;
या छेड़ते तान तो लगते रूखे उनके गीत,
दल मुरझाते डरते समझ निकट ही दारुण शीत।

९८

मैंने सहा वसन्त काल में तेरा विरह अपार,
जब वैशाख सजा था गर्वित मंजरियों के भार,
फूँकी थी प्रत्येक कंठ में तरुणाई की तान,
सस्मित शस्य किलकती उसके साथ विपुल गा गान।
तदपि न मोहक राग खगों के और न मधुर सुगन्ध
नाना कुसुमों की, जिनमें हैं विविध वर्ण रस गन्ध,
मुझसे कहला सके न वे कुछ भी वसन्त के गीत,
या निज गर्वित-गोद जन्म थल से अवचित, अपनीत :
हुआ न अचरज श्वेत कमलिनी का विलोक शृङ्गार,
गाया यश न गुलाब लालिमा का ही रूप निहार,
वे थे सुन्दर मोद स्रोत देते थे अतुलित हर्ष,
तेरे चित्र मात्र से पर, तू उन सबका आदर्श।
तदपि लगा यह शीत काल ही, तुम थे मुझसे दूर,
ज्यों तेरी छाया से, मैं इनसे खेला भरपूर।

९९

मैंने अरुणिम ऊषा को यों झिड़का है हर बार;—
चारु चोर है कहाँ चुराया यह सुरभित संसार,
प्रिया-श्वास से यदि न ? तुम्हारा लाली का भंडार
तेरे कलित कपोलों का जो अनुरंजित शृंगार,
प्रिया-शिराओं में तूने है यह रंग लिया अपार।
तव भुजपाशों हित निदरे मैंने कमलिनी-मृणाल,
मार्जोरम-कलियों ने हरे तुम्हारे केश-विशाल :
हो भय-त्रस्त गुलाबों ने कांटों में किया निकेत,
लज्जा से है लाल एक दूसरा निराशा-श्वेत,
एक तीसरा लाल न श्वेत न, हर दोनों के हास,
और चुरा ली बरजोरी उसने तव सुरभित श्वांस;
पर इस चोरी हित होने पर उसका पूर्ण विकास
बदला लेगा कीट चुनेगा, जब तक हो चिर नाश।
बीसों फूल विलोके सका न ऐसा एक निहार,
जिसने न हों चुराए तुमसे गन्ध, वर्ण, व्यापार।

१००

मेरी वाणी कहाँ गई क्यों, जाती चिर तक भूल
कहना उसका यश दे रही तुम्हें जो शक्ति समूल ?
मूल्यहीन छन्दों पर व्यय करती विक्रम उल्लास,
कर निज तेज तमोमय निम्न गुणों पर डाल प्रकाश ?
विस्मृतिशील गिरे, लौटो कर दो झट से अनुपूर्ति
कोमल छन्दों में यों ही व्यय हुए काल की पूर्ति;
उसे सुनाओ गीत करे जो जन उनका सम्मान,
जो उनमें भरता कौशल औ' नूतन अर्थविधान।
अलस गिरे, उठ करो सुभग मम प्रिय-मुख की पड़ताल,
और वहाँ यदि कुछ रेखाएँ खींच चुका हो काल;
यदि कुछ भी तो व्यंग-काव्य बन जाओ उस क्षय हेतु,
घृणा-पात्र सर्वत्र बना दो काल के विजय-केतु।
यश दो मेरे प्रिय को करे काल ज्यों जीवन-नाश;
जिससे उसका दंड रोक दो और कुटिल तुम पाश।

१०१

अरे, प्रमादी गिरे, करेगी पीछे क्या प्रतिकार,
छवि-रंजित सच हित प्रमाद निज का कर भूल-सुधार ?
मेरा प्रिय कि सत्य-छवि दोनों का ही है आधार;
वैसे ही तुम भी उससे गौरव पा रही अपार।
वाणी उत्तर दे : क्या सहसा न यह कहेगी बात,
"सत्य न चाहे रंग सुनिश्चित उसका रंग-निपात,
छवि चाहे तूलिका न, वह तो सच का ही विन्यास;
पर उत्तम उत्तम है, अन्तःमिश्रित यदि न विलास ?
मधुराकृति मंडन चाहे न, बनेगी तो क्या मूक ?
चुप का यह मिस दो न, निहित तुममें यह बात अचूक
स्वर्ण-समाधि से उसे चिरजीवी कर सको अतीव,
भावी युगों हेतु कर सकती उसकी कीर्ति सजीव।
गिरे, करो निज कार्य; सिखाता उसका कीर्ति-कलाप
चिर कर सकती कैसे, उससे जो कि प्रकट अब आप।

१०२

मेरा प्यार सुदृढ़ दुर्बलतर यदपि हो रहा ज्ञात;
मैं न प्यार कम करूँ दृष्टिगत होता कम सच बात,
है वाणिज्य तुल्य वह प्यार कि जिसका मूल्य अपार
बता-बता करती स्वामी जिह्वा सर्वत्र प्रचार।
मेरा प्यार नया था, पाकर जब वसन्त की तान,
मैं गाता था स्वागत हित रसभरे सुनहले गान;
ज्यों वसन्त पा कोकिल कूज सुनाती मधुर विहाग,
समय बीतने पर रुक जाता उसका पंचम राग :
बात न यह कि हो गई ऋतु उससे कम सुखप्रद आज,
करुण गीत उसके जब मूक बनाते थे निशि-साज,
पर वह वन्य-गीत अब दल-दल करता भाराक्रान्त,
मधुर सर्वसाधारण बन खोते सुखदता नितान्त।
कभी कभी उस सा ही रखता रोक स्ववाक् प्रपंच,
क्योंकि न भार बनूँगा निज छन्दों से तुम पर रंच।

१०३

अरे, दैन्य क्या मेरी वह वाणी दिखलाती आज,
जिसे दिखाने को निज गौरव मिला अनूठा साज,
निर्विशेष ही वर्ण्य, कहीं हैं अतिशय चारु अपूर्व,
मेरे द्वारा योजित यश-गरिमा पाने से पूर्व।
लिख सकता यदि अधिक न, तो तुम मुझे न देना दोष!
देखो अपना मुकुर वहाँ मुख एक रूप का कोष
मेरी कुन्द कल्पना के हित जो है कहीं अगाध,
छन्द बना निर्जीव दिखाता नीचा मुझे अबाध?
क्या न पाप तो करने चलना उसका साज-सुधार,
वह बिगाड़ना वस्तु पूर्व ही जो सुषमा-आगार?
मेरे गीतों का अभिप्रेत न कोई अन्य विहार,
बस तेरी छवि तव वरदानों का करना शृंगार;
अधिक हमारे छन्दों से है कहीं अत्यधिक सार,
तेरे निज दर्पण में लेता जब तू उसे निहार।

१०४

सुभग सुहृद, मेरे हित कभी न तुम होओगे वृद्ध
क्योंकि प्रथम देखे दृग तेरे जितने सुधा समृद्ध
अब भी लगती वैसी ही तव छवि, बीते हिम तीन
तीन ग्रीष्मऋतु बना चुके जगती में गर्व विहीन,
तीन मनोरम मधुऋतु खिलीं और मुरझाई शान्त
मैंने देखा यह ऋतु-चक्र घूमता अतिदुर्दान्त
तीन चैत-मधु-गन्धें झुलसीं तप्त तीन पा जेठ
प्रथम-मिलन सी ताजी, उतनी हरी बनीं तुम ठेठ
अरे, रूप फिर भी घड़ियों की सुइयों के अनुरूप
यदपि न दिखती चाल बदलता है निज किन्तु स्वरूप
रुचिर रंग प्रिय, तेरा तव त्यों स्थिर होता मुझे प्रतीत
इसमें गति, संभव दृग मेरे ठगे वर्णनातीत
उसके ही भय से सुन ले तू आयु अशिष्ट अतीव
तेरे जन्म से प्रथम थी, छवि-मधुऋतु मृत निर्जीव।

१०५

अरे, मूर्तिपूजा कहलाए कहीं न मेरा प्यार,
मेरा प्रिय बन जाय न कहीं मूर्ति की ही अनुहार,
क्योंकि एक से ही होते मेरे सारे यश-गीत,
इक हित, एक के, अभी वैसे, वैसे सदा प्रतीत।
सानुग्रह प्रिय आज कि कल भी होगा सकृप अपार,
सदा रहेगा स्थिर वह ऐसा अत्यद्भुत गुण धार;
अतः छन्द मेरे स्थिरता में सीमित रहें अखेद,
एक बात ही व्यक्त करें छोड़ कर समूचे भेद।
सुन्दर, सकृप, सत्य—त्रस मेरे वर्ण्य विषय सोपाय,
सुन्दर, सकृप, सत्य औ, उनके अन्य नाम पर्याय;
इस परिवर्तन में होतो व्यय मम कल्पना निदान;
तीन विषय एक में करें जो अद्भुत क्षेत्र प्रदान।
सुन्दर, सकृप, सत्य, प्रायः एकाकी थे निरधार,
अब तक तीनों को न मिला था कहीं एक आधार।

१०६

जब अतीत युग का इतिहास पलट पढ़ता आख्यान
नखशिख सबसे सुभग व्यक्तियों का जो रूप-निधान,
उन छन्दों को सुन्दरता देने वाला सौन्दर्य,
मृत सुन्दरियों, सुन्दर वीरों का गौरव लावण्य,
उस युग की सुललित छवि के वे सर्वश्रेष्ठ उल्लास,
कर के, पग के, अधर-नयन के, भ्रू के विशद विलास,
लगता उनकी जीर्ण लेखनी कर सकती थी व्यक्त
इस छवि को भी बनी अनुचरी जो तुममें अनुरक्त।
अतः भविष्य वाक्य से इस युग हित उनके यशगान
वे सब हैं बस तेरा पूर्व-प्रकल्पित रूप-विधान;
और चूंकि वे थे भविष्यद्रष्टा ही मात्र महान्,
उनमें था कौशल न, कर सकें जो तेरा गुण-गान :
हम जो इस प्रस्तुत युग में रहते देखते निदान,
विस्मय हित दृग रखते जीभ न करने को गुण-गान।

१०७

आशंका न हमारी या भविष्य-वाणियाँ अपार
दुनियाँ भर की जो निरूपती हैं भावी संसार,
मेरी सच्ची प्यार अवधि वे तदपि न सकती माप
जो सावधि दुर्भाग्य का वशग अनुमानित है आप।
नश्वर शशि ने अपना ग्रहण कर लिया है सब पार,
हैं ज्योतिषी उदास विफल पा अपने वाक्य-विचार;
आज अनिश्चय हो आश्वस्त बन गया युग-सम्राट्,
शान्ति सुनाती है अनन्त युग का सन्देश विराट।
इस अतिशय व्रणपूरक युग की पा कुछ बूँदें आज
मेरा ताजा प्यार और मैं बना मृत्यु-अधिराज,
मैं उनके स्पर्धार्थ जिऊँगा इन छन्दों के साथ,
वह निर्वाक् विमूढ़ जनों में दिखलाएगा हाथ।
इनमें ही अपनी समाधि तुझको होगी चिर-प्राप्त,
उग्र धातु के शिखर कब्र सब होंगी स्वतः समाप्त।

१०८

अरे, बुद्धि में क्या मसि अंकित कर सकती जो हाव,
जिसने खींचा तुम तक नहीं हमारा सच्चा भाव?
नूतन क्या कहने को या करने को पंजीबद्ध,
मेरा प्यार तुम्हारे गुण जो करे व्यक्त लिपिबद्ध?
कुछ न, प्रिय अरे, तदपि प्रार्थनाएँ जैसे अति दिव्य,
प्रतिदिन मुझको दुहराना होगा वह ही बस भव्य;
तू मम, मैं तव, बात पुरानी भी न पुरानी जान,
उस दिन सी नव जिस दिन तुमसे थी पहली पहचान।
शाश्वत प्यार प्यार के नव साँचे में रहा विराज
गिनता नहीं काल की क्षति प्रहार कुछ भी है आज,
आवश्यक झुर्री तक को भी देता तनिक न स्थान,
बना वृद्धता को अपना, प्रिय-सेवक तुल्य निदान;
प्रथम लहर प्यार की वहीं पर पाता पुष्ट महान्,
जहाँ काल औ' बाह्य रूप उसको लेंगे मृत मान।

१०९

अरे, न कहना कभी कि मेरा उर है मिथ्याधाम,

शेक्सपियर के सॉनेट ५५

१०९

अरे, न कहना कभी कि मेरा उर है मिथ्याधाम,

१११

मेरे हेतु सदा तू झिड़का करता मेरा भाग्य,
मेरे दोषी कृत्यों का शासक मग हत दुर्भाग्य,
जिसने मेरे जीवन हित न किए उपबंध अनूप,
साधारण-साधन जनते साधारण शील-स्वरूप।
मिला वहीं से है मुझको यह सब कलंक अपनाम,
मेरी प्रकृति इसी से रहती है अभिभूत अकाम
जहाँ कहीं कुछ करे वहीं, जैसे रंजक के हाथ :
दया करो मुझ पर औ' चाहो हो मम नया प्रभात;
मैं अनुमत रोगी सा पी लूँगा चुप आँखें मींच
कटु औषध निज महाव्याधि की संक्रम जो अति नीच;
कड़ुए से कड़ुए को मैं मानूँगा कुछ कड़ुआ न,
शुद्ध शुद्धि करने को दुहरे प्रायश्चित्त तथा न।
करो दया प्रिय सुहृद, दे रहा आश्वासन मैं कान्त,
काफी तेरी दया कर सके चंगा मुझे नितान्त।

११२

तेरे प्यार दया ने हैं भर दिए सभी वे अंक
कटु प्रवाद ने सिर पर छोड़े थे जो कुटिल कलंक;
क्या चिन्ता दे सुनाम कोई या कर दे बदनाम,
मेरे बुरे भले कर, भले मान लो अनुमत, काम ?
तुम मेरी सब दुनियाँ, करना होगा मुझे प्रयास
अपना यश-अपयश जानूँ तेरे मुख से सोल्लास;
मेरे हित कोई न, न मैं सप्राण किसी के हेत,
सही-गलत जो बदले मेरा दृढ़ीभूत अभिप्रेत।
चिन्ता जग की आवाजों को मैं सब देता डाल
ऐसे गहन-गर्त में, जो मेरी श्रुति-शक्ति कराल
आलोचक-प्रशंसकों हित हो जाती बन्द नितान्त।
अरे, उपेक्षा दिखा कर रहा सभी क्षमा, मैं शान्त;—
मेरे अभिप्रायों से तुम इतनी दृढ़ परिचित पुष्ट,
तुम्हें छोड़ सारी दुनियाँ जो मेरे हित मृत नष्ट।

११३

जब से बिछुड़ा तुमसे दृग हैं मन शशि लीन चकोर;
और चलाया करते थे मुझको जो चारों ओर
हुए अंशतः अन्धे छोड़ रहे हैं अपना काम,
लगता देख रहे हैं किन्तु वस्तुतः हैं बेकाम;
क्योंकि हृदय तक पहुँचाते हैं हन्त न कोई रूप
विहग सुमन का या छवि, जिसको करते ग्रहण अनूप;
द्रुत-परिवर्तित विषय न देते मन का कोई साथ,
निजी दृष्टि तक देख न पाती जो कुछ पड़ता हाथ;
क्योंकि देखते यदि ये कुछ कठोर या मृदुल अतीव,
कुछ आधार अतीव ललित या कुरूप कोई जीव,
पर्वत अथवा सागर, उज्वल दिन या काली रात,
काक-कपोत, देखते सब में तेरा छवि-संघात।
अधिक न भर सकते, हैं तुमसे वे परिपूर्ण अपार,
यों मम सच्चा मन मम दृग को करता मिथ्यागार।

११४

अथवा मेरे मन ने तुमसे हो अभिषिक्त सनाथ,
पी ली है चाटूक्ति, रोग जो सम्राटों के साथ,
या मैं कहूँ कि मेरे नयन कह रहे हैं सच बात,
किए प्यार तव ने वे इस रस विद्या में निष्णात,
करते असुरों और विरूप वस्तुओं से निर्माण
स्वर्गचरों का तेरे ललित रूप के जो उपमान,
रच प्रत्येक विरूप वस्तु से छवि पूर्णता निकेत,
झट, ज्यों ही वे दृष्टि-पटल पर होती हैं समवेत ?
अरे, बात पहली; विचारता मैं यह चाटु निदान,
मेरा मन सम्राट् शान से करता इसका पान :
नयन जानते खूब उसे रुचिकर हैं क्या पकवान,
उन्हीं द्रवों का उसके चषक हेतु करते संधान :
यदि यह विषमय तो यह बस छोटा सा ही है पाप
नयन प्यार करते उसको, पीते पहले चुपचाप।

११५

झूठ कह रहे वे पद जिन्हें लिख चुका पिछली बार;
वे भी जो कह रहे सकूँ कर अब न अधिक मैं प्यार;
तदपि न मम विवेक कर पाता किसी बात का ख्याल
जलती पीछे पूर्व विमलतर हो क्यों मेरी ज्वाल।
किन्तु कालगति जिसके कोटिक दैवयोग सविशेष
पड़ते बीच प्रणों के पलट नरेशों के आदेश,
रूप पुनीत मलिन कर, निष्ठा प्रखर बनाने क्षीण,
दृढ़ चित्तों को पलट बनाते परिवर्तन पथ लीन;
अरे, न क्यों मैं डरता देख काल कर क्रुर दुराज,
कहता क्यों न तुम्हें कर रहा प्यार सर्वाधिक आज,
जब वस्तुस्थिति पर था मैं निश्चित औ' निःसन्देह,
वर्तमान को मान, शेष सबके प्रति रख सन्देह ?
प्यार एक शिशु फिर मैं कह दूँ क्यों न एक यह बात,
पूर्ण विकास उसे देने को जो कि अभी नवजात ?

११६

सच्चे मनों के मिलन में मानूँ नगण्य संचार
बाधाओं का। प्यार नहीं कहला सकता वह प्यार
जो परिवर्तन पाकर परिवर्तित हो जाता साथ,
या झुकता अपहृत होने को अपहारक के हाथ :
अरे, नहीं; सर्वदा अडिग वह एक बिन्दु की माप,
जो निहारता तूफानों को, कभी न हिलता आप,
प्रति पथभ्रष्ट नाव हित वह ध्रुवतारे के अनुरूप
अविदित जिसका मूल्य, यदपि ऊँचाई माप्य अनूप।
वह न काल किंकर हैं यदपि गुलाबी अधर-कपोल
कवलित होते उसके कुटिल पाश में पड़ अनमोल;
प्यार न निज लघु-घड़ियों-हफ्तों में बदलता स्वरूप,
बल्कि प्रलय के दिन तक अडिग रखा करता निज रूप।
यदि यह बात गलत औ' मुझ पर हो जाए यह सिद्ध,
मैं कदापि हूँ कवि न, न कोई व्यक्ति प्रेम-अनुविद्ध।

११७

मुझे दोष दो यही; कि मैंने नष्ट किया सब प्राण !
जिससे मुझे चुकाना था तव-असफलता-प्रतिदान;
भूल गया तव प्रेय प्रेम का करना मैं आह्वान,
जिसमें अनुदिन मुझे बाँधते सभी बंध-बंधान;
निकट मित्र मैं हूँ रहा अपरिचित मस्तिष्कों के साथ,
तव स्वक्रीत अधिकार नष्ट कर दिया काल के हाथ;
सभी आंधियों में मैं बहता रहा दृगों को मींच
जो मुझको ले जाएँ तुमसे दूर बहुत ही खींच ।
मम स्वेच्छाचारिता और त्रुटियाँ लिख लो धर ध्यान,
संचित कर लो संशय-हेतु प्राप्त कर उचित-प्रमाण,
निज भ्रूकुंचन के प्रसार में तुम लो मुझको खींच,
पर न मारना मुझको अपनी घृणोत्पत्ति के बीच :
क्योंकि अपील यही मम, था यह सब मम यत्न निदान
करने हेतु सिद्ध तेरा है प्यार अडिग गुणवान् ।

११८

जैसे अधिक प्रखर करने को अपनी क्षुधा अपार,
तेज चटनियों से लेते हम मुख का स्वाद सुधार;
जैसे हम अदृष्ट रोगों का निरोध करने हेत,
रोग बचाने हित रोगी बन लें जुलाब अभिप्रेत;
तेरी कभी-न-तृप्त-मधुरिमा से त्यों हो भरपूर,
कटु चटनियाँ बनाता अपनी खाद्य, स्वास्थ्य से दूर,
तंग अनामय से आ आमय अपनाता चुपचाप
उसमें कुछ हित पा आवश्यकता से पहले आप ।
यही प्यार में नीति कि करना प्रत्याशित विश्वस्त
रोग न थे जो विद्यमान, बन दोषों हित आश्वस्त,
और चिकित्सा हित प्रस्तुत कर देह पूर्ण नीरोग,
जो मंगलमय होने से, सुधरेगी पाकर रोग ।
किन्तु सीखता एक पाठ देखता कि यह सच बात,
उसके हित जो तुमसे तंग, सुधा विषमय-संघात ।

११९

मैंने किया करुण संगीत अश्रुओं का मदपान,
अंतस नरक तंतुओं से जो खींचा गया निदान,
देख निराशा आशा में व निराशा में पा आश,
फिर भी हार, विजय का जब होता था कुछ आभास !
क्या क्या भीषण-भूलें मेरे उर ने की हैं हाय,
निज को मान रहा था जब अतिशय सनाथ सोपाय !
कैसे मेरे दृग बाहर निकले स्वपरिधि से हाय,
इस प्रमाद ज्वर के पागलपन में पड़कर असहाय !
अरे, दोष का लाभ आज होता मुझको सच ज्ञात
सुभग सुभगतर बनता सहकर दोषों का उत्पात;
जीर्ण प्यार जब पाता है निर्माण नया उत्ताल,
बनता पहले से अतिशय सुन्दर सशक्त सुविशाल ।
वैसे पा झिड़कियाँ तुष्ट हो मैं लौटूँ चुपचाप,
व्यय से तिगुना अधिक कहीं पा लाभ दोष से आप ।

१२०

कभी रहे तुम निष्कृप, मित्र बन रहे मेरे आज,
उस वेदना हेतु जो मैंने थी तब सही अकाज !
क्या मुझको झुकना होगा निज पापों को कर याद,
यदि न स्नायु दृढ़ धातु के बने या पाकर फौलाद ।
क्योंकि अगर मम अदयशीलता से तुम पीड़ित आप,
जैसे मैं तेरी से, तुमने सहा समय-अभिशाप;
और क्रूर, मुझको तो गिनने को न मिला अवकाश
कितना कभी दोष तेरे ने मुझे दिया भय त्रास ।
मेरी व्यथा-निशा को रखनी थी मम दुख की याद
सब कुछ, कितना पीड़ित सच्चा दुख करता अविवाद,
झट देता तुमको ज्यों तुमने मुझको किया प्रदान
क्षत उर झट चंगा करने वाली मलहम का दान :
पर अब तेरा पाप बन रहा है शुल्क सा निदान;
मेरा तव-भुगतान कर रहा तू कर मम भुगतान ।

१२१

बद हो जाना अच्छा है हो जाने से बदनाम,
जब कि न होने पर भी मिलता है होने का नाम,
और उचित आनन्द न मिलता, जिसको लेते मान,
अपना अनुभव है न किन्तु दूसरे करें अनुमान।
क्यों अन्यों का मिथ्या औ' अपमिश्रित नेत्र-समाज,
मम कौतुकाचार का करता अभिवादन सव्याज ?
या मम दुर्बलताओं पर लग क्यों दुर्बलतर दूत,
मन में गिनें बुरा वह मानूं जो मैं सुन्दर पूत ?
अरे नहीं—मैं तो जो हूँ, हूँ ही; औ' वे अनुरूप
खोज बुराई मम दिखलाते निज ही कुत्सित रूप :
मैं तो सीधा हूँ वे ही हैं टेढ़े स्वयं अकार्य;
उनके घृणित विचारों से मम कृत्य नहीं निर्धार्य;
जब तक वे हैं नहीं मानते यह साधारण दोष,
सभी बुरे हैं निजी बुराई में पाते परिपोष।

१२२

तेरी भेंट पट्टिका सब हैं स्थित मन में अविवाद
उनका पूरा रूप-प्रकार रहेगा चिर तक याद
तुच्छ पदार्थों के पश्चात् रहेगा जो अवशिष्ट,
शाश्वत युग तक चिर तिथि प्रलय काल तक बना विशिष्ट :
या कम से कम जब तक बुद्धि हृदय रहकर संसक्त
प्रकृति पराजित कर जीवित रहने के हित हैं शक्त;
जब तक नाशक विस्मृति में दें उभय न तज निज रूप
तेरा, तब तक लुप्त न होंगे तव अभिलेख अनूप।
क्षुद्र धारिणी शक्ति न इतना रख सकती है आप,
चहूँ न गणन शलाका करने को तव प्रेम प्रमाप;
अतः किया साहस उनको निज से देने के हेत,
सौंपी वही पट्टिका जिनमें तव अतिमात्र निकेत :
तुझे याद करने के हेतु एक करने अनुपूर्ति,
आवश्यक मुझमें विस्मृति का शुभागमन औ' पूर्ति।

१२३

काल, न तू यह हांक सकेगा मेरा बदला रंग :
अरे, पिरामिड तव नूतनतर बलशाली उत्तुंग
कुछ न नए या कुछ अदभुत वे मेरे हेतु अजान;
एक पूर्ववर्ती सुदृश्य के वे नेपथ्य-विधान।
दिवस हमारे परिमित होता विस्मय हमें विशाल
हम पर तेरी कपट-कला से जो है जरठ कराल,
अच्छा है जो रचो उन्हें मम इच्छा के अनुकूल,
और सुन चुके हम उनका यश यह मत जाओ भूल।
तुमको, तव-लेखों दोनों को रहा आज ललकार,
वर्तमान या अतीत पर विस्मय न मुझे बेकार :
हम तेरे अभिलेख और वे देख रहे अवशेष,
हुआ बहुत कुछ तेरी हड़बड़ में जिनका उन्मेष :
यह मेरा प्रण और रहेगा संतत यह उत्ताल,
सदा रहूँगा सत्य भले ही तू तव-पाश कराल।

१२४

मेरा प्यार कहीं होता यदि बच्चा निभृत अनाथ,
बिना पिता का रहता तो बन भाग्य-पुत्र दुर्जात,
उतना होता काल-प्रेम या काल-घृणा आधीन,
जैसे घास घास से सुमन सुमन से अवचित दीन।
नहीं, दूर दुर्घटना से इसका निर्माण-प्रपंच;
भरे न इसमें हास-विलास प्रदर्शन; अथवा रंच
यह है खिन्न न असंतोष का पाकर घोर प्रहार,
काल चाहता जिन पर रचें कि हम अपना संसार
इसे न नय से भीति कि जिससे करता वह पाखंड,
जो परिमित घड़ियों के पाता है कुछ परिमित खंड,
यह है एक नयज्ञ सा निभृत एकाकी सुविशाल,
गरमी से न उगे न डूब जाए पा सीकर-जाल।
काल-प्रमत्तों को मैं इसका साक्ष्य बनाता सत्य,
जो सत् स्थिति में मर जाते, जी असद् राज्य में नित्य।

१२५

रखना था क्या उचित मुझे ऊपर वह छत्र अपार,
ऊपर से कर मात्र दिखावे को आदर सत्कार,
क्या हित होता रोप प्रेम हित चिर गुरुतर आधार,
जो हैं जीर्ण खंडहर से भी लघु अल्पायु अपार ?
रूप दया पर बसने वाले देखे कितने क्या न
खोते सब कुछ, और अधिक, दे अधिक किराया-दान,
बाह्य-माधुर्य के लिये खोकर अंतः सहज-सुगंध
कुवर्णिक् बस देखने मध्य कर सब कुछ नष्ट मदांध ?
नहीं;—बना रहने दो मुझको निज उर निकट विनीत,
लो यह मेरी भेंट अकिंचन पर बेहिचक पुनीत,
भरे न गौण-भाव इसमें है कौशल का न प्रचार,
मेरा तेरे हित बस आपस का है यह व्यापार।
अतः अनिष्ट निवेदक ! आत्मा एक सत्य औ' शाँत,
हो अतिशय लांछित रहती न तुम्हारे हाथ नितांत।

१२६

ओ, मेरे प्रिय शिशु तुम रखते पकड़ बिना आयास
कुटिल काल का चंचल दर्पण, घड़ी क्रूर वह पाश;
जो घट घट कर बढ़ी और जिसमें हैं प्रकट निदान
तेरे प्रिय की जरा, सुछवि तव ज्यों होती उत्तान !
यदि वह प्रकृति पुरातन जीर्ण स्वामिनी सर्वोत्कृष्ट,
ज्यों तुम करते प्रगति खींचती तुमको पीछे धृष्ट,
तो वह इस कारण कि कला-कौशल उसका सब काल
लेगा छीन और कर देंगे अंत निमिष विकराल।
फिर भी उससे डरो कि तुम उसकी अभिरुचि के दास;
वह सकती है रोक, न फिर भी पर रख कोश-विलास :
उसकी जांच देर से हो पर उत्तर है अनिवार्य,
तेरे प्रत्यर्पण में उसकी है निवृत्ति कृतकार्य।*

* कुछ विद्वान इस सॉनेट के साथ, जिसमें केवल बारह पद ही हैं और मूल की तुक-योजना भी द्विपाद जैसी है, पहली 'सुभग-पुरुष' को संबोधित माला का अन्त मानते हैं। —अनुवादक। (विशेष दे० आमुख)

१२७

काले को न पूर्व युग में गिनते थे सुन्दर वर्य,
यदि गिनते भी थे न इसे तो कहते थे सौन्दर्य;
पर अब काला सुन्दरता का है जैसे सर्वस्व,
और हो गई है सुन्दरता उससे लांछित निःस्व :
क्योंकि पड़ी है प्रकृति-शक्ति जन-जन के पल्ले आज,
हुए अचारु चारु हैं रचकर झूठा नकली साज,
सुन्दरता का रहा न नाम न कोई स्थान पुनीत,
दुर्गति भले न, किन्तु असंस्कृत लौकिक सब अस्फीत।
मेरी स्वामिनि के काले है अतः नेत्र अत्यन्त,
वे दृग समुचित; लगते उनके परिवेदक से हन्त
जो जन्मे न सुभग पर सुन्दरता का नहीं अभाव,
मिथ्या-यश से लांछित करते सृष्टि-भावना-भाव :
फिर भी इतना वे बिसूरते निज शोकार्त अपार,
प्रति जिह्वा कहती सुन्दरता हो यों रूपागार।

१२८

जब-जब मेरी वीणे, वीणा ले तुम छेड़ो तान,
उस सौभाग्यशालिनी लकड़ी पर, जिसके गति ध्वान
तेरी ललित अंगुलियों से बजते, जब पा तब स्पर्श
क्वणित तार-सप्तक होता, मम श्रुति-कुहरों का हर्ष;
ईर्ष्या आती मुझको उन पर जो उछलते समोद
तेरे कर का कोमल नि-तल चूमने को सविनोद,
जब कि दरिद्र होंठ मेरे जिनका वह लव है प्राप्य,
लकड़ी के साहस पर रहते खड़े सलज्ज अमाप्य !
पाने को यह स्पर्श बदल लेंगे वे अपना स्थान
और परिस्थिति नर्तित तारों से जो भाग्य निधान,
जिन पर करती चारु अंगुलियाँ तब कोमल संचार,
लकड़ी का रच जीवित होंठों से सौभाग्य अपार।
धृष्ट तार हैं चूँकि हो रहे इसमें सुखी अतीव,
उन्हें अंगुलियाँ दो, निज अधर चूमने मुझे सजाव।

१२९

है निर्लज्ज भाव से परम-ओज का अपचय, नाश
प्रकट वासना का चेष्टित; तब तक वासना-विलास
मिथ्याशप्त, विघातक, निन्द्य, रक्तमय, परिहरणीय,
दारुण हिंस्र कठोर घोर अति क्रूर, अविश्वसनीय;
पा आनन्द तुरन्त घृणा का होता है संचार;
बिना वितर्क मार्गणा इसकी पा फिर झट अविचार;
बिना वितर्क घृणा, जैसे निगलना वडिश-कण मत्त;
जान बूझ कर रखा गृहीता को करने उन्मत्त :
पाने को उन्मत्त और रखने को भी उन्मत्त;
रखकर, रखने, और प्राप्ति हित उसकी अत्युन्मत्त;
अतिशय हर्ष सिद्ध होने में, होने पर दुख जाल;
पहले प्रस्तुत हर्ष स्वप्नमय पीछे कटु जंजाल :
दुनियाँ यह सब खूब जानती; पर न किसी को ख्याल,
बचना वैसे स्वर्ग द्वार से, दे जो नरक कराल ।

१३०

माना मम प्रियतमा-नयन रवि की समता में हीन;
विद्रुम के आगे हैं उसके अधर लालिमा-हीन :
यदि हिम धवल सुनिश्चित उसका वक्ष वर्ण में श्याम;
यदि कच तार, तार श्यामल उगते उस सिर पर वाम ।
मैंने देखे विपुल गुलाब सुगंधित सित औ' लाल,
तुलना न उन गुलाबों की पाते हैं उसके गाल;
गन्ध द्रव्य कुछ देते हैं फिर कहीं अधिक आनन्द
मम प्रेयसि श्वासानिल उनसे है कम सुरभित मन्द ।
प्रिय मुझको उसकी वाणी—पर जानूं भली प्रकार
होता है संगीत का कहीं अधिक मधुर झंकार;
माना, देखा कभी न मैंने सुर-सुन्दरि पद-चार,—
मेरी प्रेयसि जब चलती, करती भू पर संचार :
फिर भी मैं समझता सुदुर्लभ उतना मेरा प्यार,
जितनी वह पाती है इस मिथ्या समता में हार ।

१३१

जैसी भी हो तुम, तुम हो उतनी ही क्रूर कठोर,
जितने सुन्दरता से गर्वित होते क्रूर अछोर;
सुविदित तुम्हें क्योंकि मम प्रिय अनुरागी उर के अर्थ
तुम हो सुन्दरतम महार्घतम मणि के तुल्य समर्थ,
फिर भी, सचमुच, सच कहते, जो लखें तुम्हारा रूप,
तव मुख सकता खींच न प्रेमीजन निःश्वास अनूप :
"भूले वे" यह कहूँ, न इस दुःसाहस हेतु समर्थ,
यदपि अकेले मन में ले लूं शपथ कोटि इस अर्थ,
और न संशय मेरी शपथ नहीं है रंच असत्य,
तव-छवि अयुत खींचती मम निःश्वास सुनिश्चित सत्य,
एक दूसरी छवि पर रखता साक्ष्यों का आधार
तेरा श्यामल मेरे निर्णय से सुन्दरतम, प्यार :
कहीं न तू काली बस तेरे केवल काले काम,
और समझता उनसे ही बस तू होती बदनाम।

१३२

प्रेमी मैं तव नयनों का वे मुझ पर बड़े कृपालु,
समझ कि तव उर मुझे दुखाता घृणा सहित, अकृपालु,
पहन अतः कालापट करते वे प्रत्यक्ष विलाप,
लख मेरी पीड़ा, खा तरस, करें अतिशय परिताप।
और न सचमुच होता इतना प्रातः सूर्य ललाम
सुषमामयी उषा के उज्वल माथे पर अभिराम,
और न उग उडुपति कर पाता, पश्चिम में सोपाय
संयत सन्ध्या की उससे आधी भी सज्जा हाय,
जितने तव मुख पर दो दृग ये शोभित हैं सविलाप :
होने दो निज उर में भी अनुरूप अतः अनुताप
मेरे हित, है क्योंकि बढ़ाता तव छवि यह परिताप,
और यथोचित करे प्राप्त करुणा प्रत्यंग अमाप।
तो मैं कह दूंगा सशपथ काला होता सौन्दर्य,
तव-मुख में जो नहीं, वही सब हैं त्रुटि, दोष, अवर्य

१३३

धिक् वह उर खींचता हमारे उर से जो निःश्वास
उस भारी क्षति पर, देता जो मुझे, मित्र को नाश !
क्या पर्याप्त नहीं मुझको ही देना दुख संत्रास,
मेरा प्रियतम सुहृद् बनें क्यों अरे, दासता-दास ?
तेरे क्रूर नेत्र ने मुझसे मुझे लिया है छीन,
मेरे अन्य स्वात्म को तू कर रहा अति दुखी दीन;
उससे, अपने से, तेरे से, मैं बिलकुल परित्यक्त;
तिगुनी तिहरी पीड़ा अतः पार करनी अविभक्त ।
बंदी करो हृदय मेरा निज स्पात-वक्ष में डाल,
पर तब प्रतिभू होगा, मित्र-हृदय मम हित तत्काल;
मुझे रखे जो, रक्षक बने मम हृदय उस का हाल;
अतः न पीड़ित मुझको तुम कर सको जेल में डाल :
फिर भी किन्तु करोगी; क्योंकि तुम्हारे हुआ अधीन,
विवश तुम्हारा हूँ, सब कुछ ही तव जो मम-आधीन ।

१३४

अतः मान लेता हूँ अब, तेरा ही वह बड़भाग,
मैं भी तेरी ही इच्छा का बन्धक सब कुछ त्याग;
निज को जब्त करा दूँगा मैं जिससे मेरा अन्य
कर देगी प्रत्यर्पित, होगा वह मम हर्ष अनन्य :
पर न छोड़ देगी तू और न होगा वह निर्मुक्त,
क्योंकि लालची तू, वह है अत्यन्त दया-संयुक्त;
उसने सीखा बस प्रतिभू बन लिखना मेरे हेत,
उसी बन्ध पर जो उस पर भी उतना ही अभिप्रेत
तू ले लेगी वापस निज छवि का वह विधि बंधान,
अरे, कुसीदक तू, करती सबका उपयोग निदान,
बना ऋणी जो मम हित उस पर चला रही अभियोग;
उसे खो रहा मैं, कारण मम निर्दय असदुपयोग ।
उसे खो चुका मैं, वह, मैं, दोनों तेरे आधीन;
देता वह सब चुका, तथापि नहीं हूँ मैं स्वाधीन ।

१३५

पूरी इच्छा हुई किसी की तुझको मिला अभीष्ट,
मिला लाभ-हित इष्ट, और अत्यधिक संकलित इष्ट;
अब भी बहुत ही अधिक तुझको मैं देता संताप,
तेरी मनचाही में स्वयं जोड़कर यों कुछ आप।
क्या तू जिसका इष्ट सुविस्तृत तथा विशाल अपार,
निज में मेरा इष्ट छिपाने को होगी तैयार ?
सानुकूल क्या और दूसरों में होगा तब इष्ट,
पर स्वीकृति पा धन्य न होगा, क्या मम हंत अभीष्ट ?
सागर जलमय है तथापि अपनाता वर्षा धार,
अपने संग्रह में भरपूर जोड़ता और अपार;
वैसे तुम, निज इष्ट में धनी लो स्व-इष्ट में जोड़
एक इष्ट मम, करो वृहत्तर स्व-इष्ट, संशय छोड़।
नष्ट न करें अदय तेरी सुन्दर प्रार्थी अभिशाप;
सोचो सब तज एक, मुझे उस एक इष्ट में आप।

१३६

तेरा मन रोकता तुझे क्यों मैं हूँ आता पास,
तो कह उसे अंधे से मैं हूँ तेरा इष्ट-विलास,
और इष्ट को वह जानता कि मिलता वहाँ प्रवेश;
प्रिये, प्रेम-हित यह अनुरोध करो पूरा निःशेष।
क्या तव प्रेम कोष की पूर्ति करेगा सुभग अभीष्ट,
हाँ, भर लो इष्टों से उसको और एक मम इष्ट,
विपुल-प्राप्त वस्तुओं मध्य है सहज-सिद्ध यह बात;
बहुसंख्या में रहे एक का सदा नगण्य निपात।
तो बहुतों में मुझे बना रहने दो चुप अज्ञात,
तब संचय-लेखे में यदपि एक मैं निश्चित बात;
मुझे न कुछ समझो, चाहो तो लो यह कृपया मान
कि 'न-कुछ' मैं हूँ प्रिय 'कुछ' तेरे हेतु पदार्थ निदान;
बस मम नाम को समझ लो निज प्यार करो वह पुष्ट,
तो करती हो प्यार मुझे तुम क्योंकि नाम मम इष्ट।

१३७

अन्धे, मूढ प्यार, तुम क्या करते नयनों के साथ,
वे निहारते न कुछ सूझता पड़ता उनके हाथ ?
उन्हें विदित सुन्दरता क्या है क्या है उसका स्थान,
तदपि श्रेष्ठतम जो कुत्सिततम उसे रहे हैं मान।
यदि दृग भ्रष्ट हुए कर पक्षपात युत दृष्टि निपात,
गड़े जहाँ कि सर्वसाधारण करें नेत्र-विनिपात,
नयन-अनृत की क्यों रखतीं तुम नकली कीलें बंक,
जिनमें मम उर का निर्णय है बंधा हुआ निःशंक ?
क्यों मेरा उर सोचे ऐसे खंडित स्थल की बात,
जाने मम उर जहाँ विश्व का साधारण पद-पात ?
क्यों मेरे दृग लखकर यह, कह दें यह उचित न बात,
करना इतने कुत्सित मुख पर सुभग सत्य-विनिपात ?
सत्य शुद्ध बातों में उर नयनों ने किया प्रमाद,
अब वे इसी असत्य व्याधि में परिवर्तित अविवाद।

१३८

लेती शपथ प्रिया है जब कि भरा उसमें सब सत्य,
करता मैं विश्वास यदपि जानूँ वह कहे असत्य,
सोच सके वह मुझे अशिक्षित एक युवक अज्ञान,
जिसे न जग की अनृत-विदग्धवाणियों का कुछ ज्ञान।
वृथा सोच यों मुझे मानती युवक एक मनचीत,
यदपि जानती मेरे श्रेष्ठ दिवस सब हुए अतीत,
कर लेता मैं उसके मिथ्या कथनों पर विश्वास;
यों दोनों ही ओर सरल सच का है निग्रह, नाश,
पर वह क्यों न कहे वह है अन्यायिन एक अछोर,
और न क्यों मैं कहूँ कि मैं हूँ एक वृद्ध बरजोर ?
कर लेना विश्वास प्रेम की श्रेष्ठ बान है एक,
आयु प्रेम में नहीं चाहती वर्षों का उल्लेख :
अतः झूठ कहता मैं उससे, वह मुझसे चुपचाप,
मिथ्या कह अपने दोषों में हम सुख पाते आप।

१३९

कहो न मुझे उचित ठहराने को वह तुम निज दोष
जो रखती तेरी अकृपा मेरे उर पर सहरोष;
मुझे न घायल करो स्वदृग से करो जीभ-उपयोग;
जादू से मत मारो करो शक्ति-हित शक्ति प्रयोग।
कह दो करती प्यार कहीं अन्यत्र, परन्तु समक्ष
मेरे, प्रिये, न फेंको तुम अपने अन्यत्र कटाक्ष।
क्यों चतुराई से मारो, जब तेरी शक्ति अपार
कहीं अधिक भेदती कि जितना सह सकता मैं वार?
मैं दूँ तेरा उत्तर सुविदित प्रेयसि को यह बात
उसके कल-कटाक्ष करते थे मुझ पर रिपु सी घात;
मेरे मुख से हटा रही वह मेरे रिपु इस हेत,
कि वे करें अन्यत्र घाव चोटें संहार अचेत:
ऐसा तदपि करो मत, बल्कि चूँकि मैं मृतवत् आप,
मुझे मार डालो कटाक्ष से मेटो कष्ट-कलाप।

१४०

जितनी क्रूर, बनो उतनी ही विज्ञ, न डालो जोर
मेरे मौन-धैर्य पर, दिखला अपनी घृणा अछोर;
न कहीं व्यथा शब्द दे मुझे, शब्द कर दें अभिव्यक्त
दयाहीनता जन्य वेदना-रूप ताप-संयुक्त।
यदि दे सकता तुम्हें बुद्धि, होगा यह सुभग अपार,
यदपि न करो प्यार तुम; फिर भी कहो कर रही प्यार;
(जैसे क्षण-कोपन रोगी स्वमृत्यु आने पर पास,
वैद्यों से सुनते बस स्वस्थ वृत्त ही निज सोल्लास;)
क्योंकि बनूँगा पागल अगर कहीं हो गया हताश,
पागलपन में करूँ न तव प्रति अनुचित वाग् विलास:
अब दुर्भाव भरी दुनियाँ इतनी है यह बदजात,
पागल कान मानते सच पागल प्रमाद की बात।
मैं न बनूँ ऐसा, न तुम्हीं यह पाओ अनृत प्रवाद,
सहज रखो निज दृग, न रखे डर यदपि हमारी याद।

१४१

करता न मैं वस्तुतः तुमको निज नयनों से प्यार,
वे तुझमें पाते हैं दोष हजारों बारंबार,
पर वे करते घृणा उसी को उर करता है प्यार,
लख कर भी जो पाता स्नेह कार्य में हर्ष अपार।
मुदित तुम्हारे स्वर से होते नहीं हमारे कान;
कोमल भाव न जागृत होते स्पर्श हेतु उत्तान,
स्वाद न, गंध न, न कुछ चाहते वह आमंत्रण-योग
जो तुमसे हो एकाकी इन्द्रिय विषयों का भोग :
यह पंचेन्द्रिय जन्य पँचगुना ज्ञान न सके निवार
मम पागल उर को करने से तव सेवा-संभार।
जो तज देता हो अनीश अपना सब पौरुष-भाव,
तव गर्वीले उर का सेवक बनने में रख चाव :
अपनी पीड़ा में इतना ही लाभ रहा मैं मान,
जो करवाती पाप दे रही वही दर्द का दान।

१४२

प्यार पाप मेरा गुण घृणा तुम्हारा प्रिय अत्यन्त,
मेरे पाप की घृणा आधृत पाप प्यार पर हन्त :
पर मेरी से करो निज दशा की तुलना क्षणमात्र,
तुम देखोगी स्वयं न है यह तिरस्कार की पात्र;
या, हो भी तो, नहीं तुम्हारे उन अधरों से आप,
किया जिन्होंने दूषित था निज रंजित वर्ण-कलाप,
मिथ्या-बंध प्रेम के कर मुद्रित मम जितने आप;
लूट अन्य सेजों की प्राप्य शुल्क-निधियाँ चुपचाप।
हो यह वैध, तुम्हें करता, जितना उनसे तुम प्यार
जिनसे तव दृग करते, तुमसे मम दृग सी मनुहार :
दया उगाओ निज उर में जिससे उगने पर आप,
तेरी दया बन सके स्वयं दया का पात्र अमाप।
यदि तुम वही चाहती जिसे रख रही गुप्त निदान,
निज-उदाहरण लो यह तुमको दे निषेध प्रतिदान।

१४३

जैसे सावधान गृहिणी दौड़ती पकड़ने आप
अपना पाला पोसा पंछी उड़ता पा चुपचाप,
शिशु को नीचे बिठा, भागती हड़बड़ में अत्यन्त
उसे पकड़ने जिसे चाहती लेना पकड़ तुरन्त;
जब कि उपेक्षित शिशु रोता पीछे पड़ अस्तव्यस्त,
उसे पकड़ने को, जिसकी है सारी चिन्ता न्यस्त
उसे पकडने में जो आगे भाग रहा उत्तान,
बेचारे शिशु के क्रन्दन पर देती तनिक न ध्यान;
वैसे भाग रही तू उसके पीछे जो अति दूर,
करूँ अनुसरण शिशु सा तेरे पीछे पड़ा सुदूर;
पर प्रत्याशित मिले तुझे तब रखना मेरा ख्याल,
हो कृपालु माँ तुल्य चूमना मुझे समझ निज लाल :
पूरी हो तेरी "इच्छा" है यही प्रार्थना एक,
लौटो तुम तब मैं पीछे रोता होऊँ रख टेक।

१४४

मेरे पास निराशा आश्वासन के हैं दो प्यार,
जो दो प्रेतों से मुझको देते सुझाव हर बार;
पहला प्रेत पुरुष है सुन्दर रखे मनोरम रूप,
स्त्री दूसरा असुन्दरतर, काला कुत्सित अपरूप।
मुझे तुरन्त नरक ले जाने को मेरा स्त्री-प्रेत
मुझसे फुसलाती सुन्दर परेत को कर संकेत,
मेरे मुनि को राक्षस कर देना उसका मनचीत,
अपने घृणित गर्व से उसकी वह विशुद्धता जीत।
क्या मम देवदूत बन जाएगा पामर बदजात,
है सन्देह मुझे, न कह सकूँ पर सीधे यह बात;
मुझसे दोनों दूर परस्पर बनते मित्र अनन्त,
देवदूत है अन्य के नरक-मध्य पड़ा हा हन्त,
पर यह कभी न जानूँगा होगा चिर यह संदेह,
तब तक कुत्सित प्रेत करेगा शुभ को बाहर गेह।

१४५

वे मधु अधर, रचा था जिन्हें प्यार ने स्वयं सँवार,
"करूँ मैं घृणा" किए जा रहे इस ध्वनि का उद्‌गार,
मेरे प्रति वह शिथिल हुई ध्वनि उसके हित कुछ आप :
पर जब उसने देखा मेरा यह सब क्लेश-कलाप,
तुरत हुआ उसके उर में अति करुणा का संचार,
झिड़का उस रसना को सदा बही जिससे रसधार
करती रही सदा ही जो बस कोमल दंड-विधान;
और सिखाया उसे नया कुछ राग, नई कुछ तान :
"करूँ मैं घृणा" उसने बदला जोड़ अंत में शब्द,
जोए पीछे आए ज्यों कोमल दिन आता निःशब्द;
कुटिल रात के पीछे, जो कि पिशाची सी अपरूप
फेंको जाती उच्च स्वर्ग से अधः नरक के कूप ।
"करूँ मैं घृणा" में "घृणा" कह आगे विराम को छोड़,
बचा दिया यह मेरा जीवन आगे—"तुम्हें न" जोड़ ।

१४६

बेचारी आत्मा मम पापी शरीर की सर्वस्व,
तव आच्छादक द्रोही शक्ति से बनी पागल निःस्व,
क्यों मन ही मन म्लान और क्यों करती है संताप,
दीवारें बाहरी सजा बहुमूल्य अरे क्यों आप ?
इतने छोट्टे पट्टे पर क्यों इतनी राशि अपार,
क्यों इस खँडहर-सौध पर रही कर व्यय अपरंपार ?
क्या इसके उत्तराधिकारी कीड़े, राशि अनन्त
खा लेंगे सब, इस शरीर का क्या यह ही है अन्त ?
आत्मे, तू निज सेवक की क्षति में पा जीवन-प्राण,
तब भंडार वृद्धि के हेतु उसे होने दे म्लान;
ले खरीद शर्तें मनवांछित, घड़ियाँ बेच असार;
भीतर से हो पुष्ट, न बाहर से बन धनी अपार :
तू कर प्राप्त मृत्यु से भोजन जिसका जन-जनखाद्य,
और मृत्यु के मरने पर, न मरण कोई सम्पाद्य ।

१४७

ज्वर सा मेरा प्यार चाहता है अब भी वह हन्त,
उसके हित जो रखे देर तक रुज् को बढ़ा अनन्त;
कर उसका पोषण जो करे रोग की रक्षा-त्राण,
व्याधिविपन्न अनिश्चित क्षुधा को बना तुष्ट निदान।
वैद्य प्यार का मेरे, मेरा वह हित-अहित विवेक,
क्रुद्ध कि उसकी बात नहीं मानी जाती है नेक,
छोड़ गया है मुझे, निराश रहा हूँ अब मैं मान
काल मृत्यु है, जिसे वैद्य ने कहा अपथ्य महान्।
लाइलाज मैं, अब विवेक है गया न आने हेतु,
मैं बिल्कुल विक्षिप्त आज हूँ सतत अशान्त अहेतु;
मेरी बातें औ' विचार पागलों तुल्य हैं आज,
यों ही, सत्यविहीन, अनर्थक, व्यक्त हुए निर्व्याज;
क्योंकि तुम्हें सुन्दर मैं बता चुका अतिशय ही कान्त,
जो कि नरक सी काली और निशा सी तमस नितान्त।

१४८

किन नयनों ने अरे, भरा मेरे नयनों में प्यार,
जिनका सच्ची द्युति से तनिक नहीं है साक्षात्कार!
भर भी दिया, तथापि गया है मेरा कहाँ विवेक,
वे देखते ठीक वह अनृत निरूपण करे अनेक?
यदि वह सुभग मम दृगों का जिस पर है प्रेम महान्,
तो दुनियाँ का क्या मतलब कहने में 'यह ऐसा न'?
यदि यह नहीं, प्यार तो है करता सम्यक् अभिधान
जग के 'न' से न सच्चे कहीं प्रेम-लोचन अनजान:
नहीं हो सके कैसे, प्रेम नयन कैसे सच हन्त,
जगने रोने में ही जो पीड़ित रहते अत्यन्त?
अतः न अचरज तनिक दृष्टि जो मम असत्य अस्पष्ट;
रवि न स्वयं दीखता, न जब तक नभ होता है स्पष्ट।
चतुर प्यार, आँसू से मुझे बनाते अंध अपार,
सूक्ष्म नयन करतूतें कहीं न ले तव कुटिल निहार।

१४९

अरे क्रूर, क्या कह सकती तू तुझे न करता प्यार,
जब मैं मन-विरुद्ध करता हूँ तेरे साथ विहार ?
क्या मैं रखता ध्यान न तेरा जब जाता हूँ भूल
कि मैं तुम्हारे हित अपने पर अति कठोर हूँ शूल ?
तेरा द्वेषी कौन रहा मैं जिसे मित्रवत् मान ?
जिस पर भ्रुकुटि-भंग तव, करता जिसकी चाटु महान् ?
जब तेजी में मुझे झिड़कती तब क्या लेता आप
बदला निज पर तुरत मनाकर न मैं विलाप-कलाप ?
अपने किस गुण का करता हूँ मैं अतिशय सम्मान,
जो समझता तुच्छ तेरी सेवा रखकर अभिमान,
जब कि सुभगतम मम सब, तव त्रुटि पूजन में है लीन,
तेरे नयनों की गति से संचालित गर्व-विहीन ?
करो घृणा तुम जान गया मैं तेरे मन का भाव;
उन्हें प्यार तुम करो सदृग जो मैं अंधा बेभाव ।

१५०

अरे, मिली किस शक्ति से तुझे है यह शक्ति सशक्त,
अपर्याप्तता से ही उर हर लिया बना अनुरक्त ?
जिससे मैं कह सकूँ न दृग मम सच-सच सकें निहार,
और दिवस में उज्ज्वल आभा का होता न प्रसार ?
पाया कैसे कुवस्तुओं से ऐसा प्रादुर्भाव,
जो तेरे नगण्यतम कृत्यों में वह भरा प्रभाव
भरी शक्ति ऐसी, कौशल की कुछ ऐसी भरमार,
जो मम मन में तव कुत्सिततम सबसे श्रेष्ठ अपार ?
सीखा यहाँ कराना निज को यों अधिकाधिक प्यार,
मैं सुन-देख घृणा का समझूँ जितना उचित प्रसार ?
घृणा करे जग जिसे यदपि मैं करूँ उसी को प्यार,
उचित न जग के साथ घृणा तेरी मुझ पर अनुदार;
तब अपात्रता ने मुझमें यदि भरे प्यार के भाव,
अति सुपात्र मैं पाने को तव प्रेम और सद्भाव

१५१

शिशु सा प्यार न जाने क्या होता सद् असद् विवेक :
कौन न जाने पर विवेक का है उससे उद्रेक ?
अरे, भद्र वंचक मत दे मेरी त्रुटियों पर जोर,
कहीं न निकले मम दोषों का तू ही दोषी घोर।
क्योंकि करे तू मम वंचन, मैं करता वंचन आप
निज सुगुणों का, छोड़ देह पर अपने छल की छाप;
मेरी आत्मा कहती तनु से संभव मेरी जीत
सुभग प्यार में; देह न माने यह विवेक की रीत;
पर, उठ सुन तव नाम बताना कर तेरा निर्देश
तू उसकी जयमाला पाकर यह अभिमान विशेष,
तेरा तुच्छ दास बनने में ही उसको सन्तोष,
तव सेवारत होने, सहचर बनने में परितोष,
यह अविवेक नहीं जो मैं कहता उसको सोल्लास
प्रिया, प्यार पर जिसके निर्भर मेरी उन्नति ह्रास।

१५२

तुम्हें प्यार करने में मिथ्या-शपथित तुमको ज्ञात,
पर तुम द्विगुणित मिथ्या-शपथित करने को प्रिय बात;
भग्न क्रिया में तव शय्या-प्रण, बिखरा नव विश्वास,
नूतन प्रेम सुफल पा किया नव घृणा व्रत अभ्यास।
पर क्यों दो ही शपथ तोड़ने का तुमको दूँ दोष,
बीसों तोड़ रहा हूँ जब मैं ? बन दोषों का कोष;
मेरे प्रण सब शपथें तुम्हें सताने को ही प्राण,
औ' मम सब सद्धर्म तुम्हीं में होता लुप्त निदान,
क्योंकि खा चुका शपथें हो तुम बड़ी कृपालु उदार,
सशपथ गाई तेरी ध्रुवता सच्चाई औ' प्यार;
अपना तुझे प्रकाशित करने हित अंधता अपार,
दृग से सशपथ कहलाया जो कि न वे रहे निहार;
क्योंकि बताया सुन्दर तुमको खाई शपथ अतथ्य,
सत्य विरुद्ध शपथ खाना फिर इतना घोर असत्य !

१५३

रख अपना धनु बाण सो गया काम-कलभ चुपचाप :
पा अवसर डायना-सेविका ने यह दुर्लभ आप,
प्रेमोद्दीपक आग चुरा ली वह ले गई तुरन्त
उस घाटी के शीत-स्रोत में रखी गाड़ अत्यन्त;
इस अतिपावन प्रेम आग से उसने पाया आप
सहने योग्य अनादि अनन्त मनोरम मोहक ताप,
बना मधुर वह स्नान मानता अब भी लोक-समाज
उसे सभी दारुण रोगों का एक अचूक इलाज।
मेरे प्रिया-नयन से जगा काम पर पा नव-बाण,
बाण-जाँच हित किया हृदय मेरे पर ही संधान;
बना रुग्ण झट मैं करना चाहा वह पावन स्नान,
जर्जर अतिथि तुल्य मैं गया उधर की ओर निदान,
कुछ भी चंगा हुआ न पर, मेरा तो स्नान-सहाय
वही प्रिया-दृग, जहाँ काम ने पाया नव-शर, हाय !

१५४

काम-कलभ सो गया एक दिन हो निश्चित उत्तान
पास रख लिया हृदयोद्दीपक अपना मोहक बाण,
आजीवन-कौमार्य साधने वालीं परीं अनेक
आईं उड़तीं, उनमें थी जो परम सुन्दरी एक
व्रतधारिणी सुन्दरी वह ले गई बाण चुपचाप
जिस शर ने अगणित हृदयों को दी थी मधुमय ताप;
और तप्त कामना कोष का वह शासक-अधिराज
अस्त्रहीन हो एक कुमारी से सोता था आज।
उसने उसका बाण बुझाया शीत कूप में डाल,
प्रेम-वह्नि से सदा ताप पाता था जो विकराल,
स्वास्थ्य प्रदायक औषध सा बन गया कि जो मधु-स्नान
रुग्ण जनों हित, पर मैं निज स्वामिनि का दास निदान,
आया रोग शान्ति हित वहाँ कि उससे सिद्ध नितांत,
जल को तप्त प्रेम करता है, जल न प्रेम को शान्त।